सी भी वस्तु से उचित लाभ उस समय तक नहीं उठाया जा सकता जब तक कि उसके आन्तरिक गुणो से परिचय प्राप्त न हो। अग्नि, जल और विद्युत सृष्टि की आदि से उपस्थित थे, किन्तु उनकी सहायता से रेल, तार, जलयान, आकाशयान और नाना प्रकार के कल कारखाने उस समय तक नहीं चलाये जा सके, जब तक कि मनुष्य ने अपने अनुभव से उनके गुणो का ान प्राप्त नहीं कर लिया। रत्न-गर्भा भगवती वसुन्धरा के गर्भ मे क से एक मूल्यवान रत्न भरे पड़े है, किन्तु वे सब के सब नेरर्थक हैं जब तक कि वे कठिन परिश्रम द्वारा बाहर न निकाले ॉय और उनकी उचित परख न की जावे। अत किसी वस्तु के ाहण अथवा त्याग के पूर्व यह आवश्यक हुआ कि उसे गुण और मूल्य की कसौटी पर कसा जावे।

कवि-हृदय तो फिर साधारण रत्नाकर से भी कहीं बढ़-चढ़ कर हरा। उसमे जितनी ही गहरी डुबकी लगाई जाती है उतना ही धिक मूल्यवान रत्न कवि संसार को भेट करता है। अब रह गा काम पारखी जौहरियों का जो उसका उचित मूल्य कि कर जनता के सामने प्रकाशित करें। साधारण लोगो की ष्टि चमकीले काच और हीरे की ठीक परख नहीं कर सकती। अतः यावहारिक संसार मे जौहरियो की आवश्यकता अनिवार्य हुई।

काव्य-रत्नो की भी ठीक यही दशा है। यो तो उन्हे पढ़ते ी हैं, किन्तु उनका यथोचित मूल्य हर किसी को ज्ञात नहीं

होता। अतः समीक्षकों का यह कर्तव्य हो जाता है कि कवि-हृदय-महासागर के अमूल्य रत्नों का परिचय वाचक वृन्द को कराये। 'स्कन्दगुप्त नाटक' कविवर श्री जयशङ्कर प्रसाद जी की उत्कृष्ट कृति है। देश के नवयुवकों को उसके पठन, मनन और निदिध्यासन की कितनी आवश्यकता है इसका यत्किंचित् अनुभव वही हृदय कर सकता है जिसके अन्दर भारत की प्राचीन गौरव-गरिमा और आर्य्य-संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा हो। देश की वर्तमान दयनीय दशा से उन्मुक्त होने के लिये भारतीय युवक और युवतियों को किस प्रकार का जीवन बिताने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये इसका दिग्दर्शन नाटक' मे पग-पग पर मिलेगा। माताएँ और पत्नियाँ किस प्रकार अपने पुत्र एवं पतियों को देश सेवा के लिये सन्नद्ध करें इसका भी पुस्तक में जीवित चित्र खींचा गया है।

देश के शासक वर्ग प्रजा की रक्षार्थ केवल साधन मात्र है, चौकीदार हैं, इसका ज्ञान स्वयं युवराज स्कन्द गुप्त के मनोगत भावो से, जो कुशल लेखक ने यत्र तत्र प्रदर्शित कराये है, खूब होता है। शासक वर्ग प्रायः प्रजा-रंजन के स्थान मे प्रजा-पीड़न की ओर अधिक प्रवृत्त होते देखे जाते है, यही और केवल यही भाव 'स्कन्द' को शासन भार स्वीकार करनेसे वार बार उदासीन बनाते हैं।

उच्च-पद और राज-सम्मान प्राप्ति के प्रलोभनो मे फँस कर निम्न कोटि के लोग किस प्रकार जननी जन्म-भूमि के प्रति विश्वासघात करने के लिये अग्रसर हो जाते हैं, इसका यथोचित् परिज्ञान भी नाटक मे कराया गया है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि नाटक समयानुकूल लिखा गया है। देश-हितैषी प्रत्येक युवक और युवती को यह पुस्तक बड़े ध्यानपूर्वक पढ़नी चाहिये। शुष्क से शुष्क हृदय भी विना प्रभावित हुए न रह सकेगा। अतीत की गौरव-गाथा भावी उत्कर्ष का वीज-वपन करती है इसमे संदेह नहीं।

किशोरीलाल

# कवि का संक्षिप्त परिचय

जन्म मिती माघ शुक्ल दशमी सम्वत् १६४६ विक्रमी, विद्या के केन्द्रस्थान काशी मे। पिता का नाम श्रीयुत देवी प्रसाद जी (सुंघनी साहु), काशी के सर्व-प्रसिद्ध तमाखू के व्यापारी। बालक जयशंकर की शिक्षा का श्री-गणेश हिन्दी और संस्कृत से ही कराया गया। संस्कृत् का प्रगाढ़ प्रेम उनकी रचना मे पग-पग पर प्रकाशित होता है। अङ्गरेजी मिडिल तक ही पढ़ पाये थे कि पिता जी का देहावसान होगया। अत. अध्ययन का घर पर ही पृथक प्रबन्ध करना पड़ा। योग्य अध्यापकों द्वारा संस्कृत्, फारसी, उर्दू और अङ्गरेजी की अच्छी योग्यता प्राप्त की। अभी सत्रह अठारह वर्ष के ही थे कि बड़े भ्राता का भी देव-लोक-गमन होगया। दूकान, कारखाना और गृहस्थ का समस्त भार इन्हीं के कन्धों पर आपड़ा। कार्य्य-कौशल और अध्यवसाय से पूर्व-प्रतिष्ठा मे कमी न आने दी। आश्चर्य की बात तो यह है कि गृहस्थ और व्यवसाय के झंझटो में संलग्न रहते हुए भी साहित्य-सेवा के लिये अवकाश येन-केन-प्रकारेण निकाल ही लेते हैं।

स्वाध्याय-शील आप बचपन ही से रहे हैं। संस्कृत-भाषा और आर्य्य-सस्कृति के अनन्य भक्त हैं। भारत के प्राचीन इतिहास का विशेषतया अनुशीलन किया है। पुरातत्व-विज्ञान की ओर भी

कम प्रवृत्ति नहीं रही। दार्शनिक विचारों की ओर भी आपकी अभिरुचि आपकी कृतियों से सिद्ध होती है। 'स्कन्द' के अभि-भाषण शेक्सपियर के 'हैम्लेट' के अभिभाषणों से टक्कर लेते है। भावुकता आपकी मर्म-स्पर्शिनी है।

कविता-कामिनी से आपका संपर्क बचपन से ही रहा है। 'प्रेम-पथिक', 'महाराणा का महत्व' आदि आपकी प्रारम्भिक कृतियाँ है। आगे चलकर आपने रहस्यवाद-मय सुन्दर काव्य-रचना की हैं। आपके विचार प्रायः दार्शनिक, भाषा क्लिष्ट और भाव गम्भीर होने के कारण साधारण जनता को आपकी रचनाओं मे इतना आनन्द नहीं आता जितना रहीम, तुलसी आदि प्राचीन कवियों की उक्तियों मे। 'आँसू', 'कानन-कुसुम' और 'झरना' आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ है। व्रज-भाषा के स्थान मे आपने खड़ी बोली को ही प्राधान्य दिया है। संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार रहती है और उनमे भी कतिपय ऐसे जो बहुत कम प्रयोग मे आते है। उदाहरण के लिये 'स्कन्द-गुप्त' नाटक से ही निम्न लिखित शब्द उद्धृत किये जा सकते है

अन्तर्वेद, विषय-पति, महाबलाधिकृत, स्कन्धावार, कादम्बिनी, आपानक, अभियान, संसृति, नखदान, प्रकोष्ठ, प्रतिश्रुति, काकली' उत्कोच, वन्या, प्रतारणा आदि।

कविताओं की अपेक्षा आप नाटक लिखने मे अधिक सिद्ध-हस्त हैं। 'स्कन्द-गुप्त' के अतिरिक्त 'चन्द्र गुप्त', 'अजातशत्रु', 'विशाख', 'जनमेजय का नागयज्ञ' 'राज्य-श्री' 'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'एक घूंट' और 'कामना' सुन्दर और शिक्षाप्रद नाटक लिखे है। इनमे दो तीन को छोड़कर प्रायः सभी ऐतिहासिक है। भारत के उज्ज्वल प्राचीन इतिहास पर आप मुग्ध है। कविवर श्री मैथिली

शरण की भाँति आप भी प्राचीन-गौरव-गाथा के सातत्य से भविष्य के उत्कर्ष की नींव जमाना चाहते हैं। आकार की दीर्घता, भाषा की क्लिष्टता और भावों की दुरूहता के कारण ये नाटक रंगमच पर अभिनय के लिये अनुपयुक्त है। किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से ये अत्यन्त उपयोगी है और नव-युवकों के पढ़ने के लिये बड़ी उत्तम सामग्री उपस्थित करते हैं।

कहानी लेखन-कला में भी आपने अच्छी कुशलता प्रदर्शित की है। इनकी कहानियां भाव-पूर्ण होती है। 'छाया' 'आंधी' और आकाश-दीप आदि कतिपय संग्रह छप भी चुके हैं। उपन्यास लिखने की ओर भी आप की प्रवृत्ति हुई है। चरित्र-चित्रण की इनमे भी प्रधानता है।

इसमे सन्देह नहीं कि श्रीयुत जयशंकर प्रसाद जी एक प्रतिभाशाली कवि, नाटककार, एवं कहानी और उपन्यास लेखक हैं। साहित्य की बहुन्मुखी सेवा का सौभाग्य बहुत कम लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों को प्राप्त होता है। देश के अभ्युत्थान और राष्ट्र-निर्माण के लिये 'प्रसाद' जी जैसे साहित्य-सेवियों की अत्यन्त आवश्यकता है।

## 'स्कन्दगुप्त' नाटक द्वारा प्रदर्शित लेखक के कतिपय विचार

अधिकार किस प्रकार प्राप्त किये जाते हैं? (भटार्क के मुख से)

"रोने से भीक मांगने से किसी को अधिकार नहीं मिलते। जिसके हाथ मे बल नहीं उसका अधिकार ही कैसा? और यदि मांगकर मिल भी जाय तो शान्ति की रक्षा कौन करेगा?"

## "कवि-जीवन के विषय में लेखक के उद्गार"

मातृ गुप्त(काव्य कर्ता कालिदास)उच्चारित शब्दों का भावः

कविता करना जन्म जन्मान्तर के पुण्यकर्मों का फल है। ऐसा विचार कर लोग प्रायः कविता करना प्रारम्भ कर देते हैं। किन्तु यह उनका भारी भ्रम है। कवि-जीवन बड़ा कंटकाकीर्ण है। बेचारों को सांसारिक वैभव से भेंटा ही नहीं होता। किन्तु इसे वे संतोषी जीवन समझ कर मन को बहला लेते हैं। सच्ची बात यह है कि कवि लोग प्रायः बड़ा दयनीय जीवन बिताते हैं। पूँजी-पतियों का, जिनके लिये वे काव्य रचना करते हैं, बुरी तरह आसरा तकना पड़ता है। कवि-हृदय-कोष से निकले अनमोल रत्न कौड़ियों मे बिकते हैं—नहीं नहीं ठुकराये जाते हैं। हां, कभी कभी पाण्डित्य और उत्कृष्ट भावों की प्रशंसा अवश्य पल्ले पड़ जाती है। किन्तु कोरी प्रशंसा से भूख नहीं बुझती। वास्तविक जीवन मे कल्पना का संसार काम नहीं देता।

जननी-जन्म-भूमि के प्रति वात्सल्य(मातृ गुप्त के मुख से)।

जन्म-भूमि जिसकी धूल में लोटकर खड़ा होना सीखा, जिसमे खेल-खेलकर शिक्षा प्राप्त की, जिसमे जीवन के परमाणु संगठित हुए; वही छूट गया। और बिखर गया एक मनोहर स्वप्न आह! वही जो मेरे इस जीवन-पथ का पाथेय रहा।

कमला के शब्दों मे मानो लेखक देश द्रोही भटार्कों को फटकार रहा है

"मुझे इसका दुःख है कि मैं मर क्यों न गई; मैं क्यों अपने कलंक-पूर्ण जीवन को पालती रही? भटार्क! तेरी मां को एक ही आशा थी कि पुत्र देश का सेवक होगा, म्लेच्छों से पद-दलित

भारत-भूमि का उद्धार करके मेरा कलंक धोडालेगा, मेरा सिर ऊँचा होगा। परन्तु हाय!"

इन शब्दों से पता चलता है कि लेखक की अनुमति में धिक्कार है उस माता को जिसका पुत्र जननी-जन्म-भूमि के उद्धार के लिये अपना सर्वस्व अर्पण न कर दे।

आगे चलकर गोविन्दगुप्त द्वारा कमला की प्रशंसा मे लेखक का मत "जब तक कमला जैसी देश भक्त" जननियां राष्ट्र मे जन्म लेगी तब तक उसका विनाश असम्भव है।"

आँखे खुलने पर शर्वनाग जैसा पतित पुरुष भी देश भक्ति का राग गाता है "विजया! चलो, देश के प्रत्येक बच्चे, बूढ़े और युवक को उसको भलाई मे लगाना होगा, कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना होगा। आओ, यदि हम-राज सिहांसन प्रस्तुत न कर सके तो हमे अधीर न होना चाहिये, हम देश की प्रत्येक गली को झाड़ू देकर ही इतना स्वच्छ करदें कि उस पर चलने वाले राजमार्ग का सुख पावे।" स्वराज्य आन्दोलन मे काम करने वालो के लिये कैसी सुन्दर सान्त्वना दीगई है! उनको यह संकेत भी किया गया है कि जब तक आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि आदि सभी दिशाओ में सुधार-कार्य न होगा तब तक स्वराज्य जैसी बहुमूल्य वस्तु प्राप्त होना कठिन है।

हूणों द्वारा देश के पदाक्रान्त होने पर मातृगुप्त के शब्दों मे लेखक के हृद्गत भावो का कैसा सुन्दर चित्र खिँचा मिलता है। उसकी अभिलाशा है कि उसके सुख-स्वप्न सच्चे हो। भारत की तुषार-मूर्च्छित आशा कलिया पर पुनः प्रभात सूर्य की तीखी किरणे अपना पूर्ण प्रकाश डाले, भारत के प्रसुप्त स्त्री पुरुष फिर से जग पड़े, आर्य्यावर्त का गौरव फिर से चमक उठे; पाप का

न्याय और पुण्य की जय मनाई जाय, गंगा,यमुना और सप्त सिन्धु से प्रवाहित इस पुण्य देश मे धन-धान्य की प्रचुरता हो, आर्य्य जाति का प्रत्येक पुरुष अपने दृढ़ और बलवान हाथो मे शस्त्र ग्रहण करके दुष्टों को दंड और शिष्टो को सम्मान प्रदान करता हुआ हिमालय की भांति अपना शिर ऊँचा करे, समस्त देश मे एक प्रकार की हल-चल मॅच जाय और चहुँ ओर से अभ्युदय की नदियाँ इस देश में वह निकले।

रामा के शब्दों मे लेखक मानो देश के नवयुवकों को यह उपदेश दे रहा है कि वे तलवार की बारीक धार पर पैर फैलाकर सोना सीखे; धधकती हुई ज्वाला मे हंसते २ कूदे; अकर्मण्यता को त्यागे और अपनी प्रचंड हुंकार से शत्रु-हृदय को कंपा दे, जिनका नाम सुनकर रोंगटे खड़े हो। जो रमणियों के रक्षक, बालकों के विश्वास, वृद्धों के आश्रय और आर्य्यावर्त की छत्र-छाया बने।

लकीर के फ़कीरों को लेखक की सलाह ( धातुसेन के मुख से )

"यह जगत परिवर्तनशील है। गति में जीवन और गति के अवरोध मे मृत्यु निहित है। चेष्टा रहित शान्ति मृत्यु का चिन्ह है। स्वयं प्रकृति क्रिया शील है। स्त्री और पुरुष उसके हाथ की कठपुतलियां हैं जिनके द्वारा यह संसार-चक्र सर्वदा चलता रहता है।"

वीर कौन है ? (जयमाला के शब्दों मे )

जो युद्ध के नाम से उसी प्रकार प्रसन्न हो जैसे मानो नाट्य शाला जा रहा हो। शस्त्रो की झंकार में जिसे बाजो की सुरीली तान सुनाई देती हो। जीवन के अन्तिम दृश्य में जिसे जीवन के

परम सौन्दर्य्य की झांकी मिले। महामाया प्रकृति के विध्वंसमय नृत्य में जिसे आनंद की प्राप्ति हो, और श्मशान में भी जिसे 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' के दर्शन होते हो।

क्षत्रिय—धर्म (जयमाला के शब्दो मे)

स्त्रियों की, ब्राह्मणों की, पीड़ितो और अनाथो की रक्षा करना। शत्रु के सन्मुख पीठ न दिखाना। लड़ाई के मैदान में सदा आगे बढ़ना। यदि गिरना भी तो मध्यान्ह के सूर्य के समान — आगे पीछे सर्वत्र प्रकाश और उज्ज्वलता दिखाई पड़े।

पृथ्वी-का-नर्क ( विजिया के शब्दों मे )

कृतघ्नता, पाखंड, छीना-झपटी, नोंच-खसोट और श्मशान के कुत्तों के सदृश स्त्री-पुरुषों का आचरण ही संसार का नर्क है।

पृथ्वी का-स्वर्ग (देवसेना के शब्दों मे)

पवित्र जीवन, कुसुम-कोमल हृदय, करुणामय मधुर वचन, यश और कीर्ति का प्रसार आदि आदि वस्तुएं पृथ्वी-तल पर स्वर्ग का अनुमान कराती हैं।

जीवन में विजय किसको मिलती है? ( चक्रपालित के शब्दों में)

जो कर्मण्य है, स्वावलम्वी है और जो दिन रात 'युध्यस्व विगत ज्वर' इन भगवद् वाक्यों का स्मरण करता रहता है।

कुकर्म-की-जननी ( शर्वनाग के शब्दों मे )

( १ ) कादम्ब ( मदिरा पान ), (२) कामिनी (पर स्त्री गमन) (३) कंचन (धन-लोलुपता)।

**दुर्दिन दूर भगाने का गुरु मंत्र** ( देवकी के शब्दों मे )

स्वजनो मे शील और शिष्टाचार का पालन, आत्म-समर्पण, परस्पर सहानुभूति और सत्पथ का अवलम्बन।

**ईश-विश्वास का फल** ( नेपथ्य गान द्वारा )

पालना बने प्रलय की लहरे।
शीतल हो ज्वाला की आँधी
करुणा के घन छहरे
दया दुलार करे, पलभर भी
विपदा पास न ठहरे
प्रभु का हो विश्वास सत्य तो
सुख का केतन ठहरे।

**अभागा कौन ?** (रामा के शब्दो में)

जो संसार के सब से पवित्र धर्म कृतज्ञता को भूल जाय और सर्व शक्तिमान जगन्नियन्ता का भय न माने।

**पुरुष और पशु में अन्तर** (देवकी के शब्दो मे)

क्षमा जो मनुष्य का एक मात्र आभूषण है पशुओ मे इस का नितान्त अभाव है। प्रति-हिंसा पशु-धर्म है।

**संसार का मूक-शिक्षक कौन ?** (देवसेना के शब्दो मे)

श्मशान-भूमि जो जीवन की नश्वरता का ज्ञान कराती है सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की सत्ता का भान कराती है।

सब जीवन बीता जाता है।
समय भागता है प्रति क्षण मे,
नव-अतीत के तुषार-कण मे।
हमे लगा कर भविष्य-रण मे,

आप कहाँ छिप जाता है ॥ सब जीवन०

बुल्ले, लहर, हवा के झोंके,
मेघ और बिजली को टोके।
किसका साहस है कुछ रोके,
जीवन का वह नाता है ॥ सब जीवन०

**ब्राह्मण सब से महान क्यों माने जाते हैं ?** (धातुसेन के शब्दो मे)

इस लिये कि वे त्याग और क्षमा की मूर्ति है, तपस्वी जीवन बिताते है, सत्य-प्रिय होते हैं, अमृत-वृत्ति (जो बिना माँगे मिले) से जीवन-निर्वाह करते हैं और साय-प्रात. विश्व की कल्याण कामना से परमेश्वर से प्रार्थना करते है

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख माप्नुयात् ॥

भावार्थ संसार के सब प्राणी सुखी रहे, किसी को कोई रोग, शोक न सताने पावे। सब का कल्याण हो और किसी को कभी कोई दुःख न सताने पावे।

**विकासवाद्** (प्रख्यात कीर्ति के मुख से)

मनुष्य अपूर्ण है, इसी से उसका ज्ञान भी अपूर्ण है। ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि करने की अभिलाषा का मूल मत्र यही अपूर्ण ज्ञान है। जो जिज्ञासु नही वह ज्ञान अर्जन कर ही नही सकता। देश, काल और स्थिति के अनुसार सब धर्मो मे परिवर्तन होता रहना स्वाभाविक है। अतः अन्ध-विश्वास और कट्टर-पंथ को जितना शीघ्र नमस्कार किया जाय उतना ही हितकर होगा।

**धर्म के ढोंग की दुर्गति** ( धातुसेन और प्रख्यातकीर्त्ति के मुख से )

धर्म बड़ी असहाय अवस्था मे है। उसे अब कोई कौड़ियों के मूल्य मे भी नहीं खरीदना चाहता। कोई क्षत्रिय राजा ऐसा समर्थ नहीं जो प्रजा से उसका पालन करा सके। ब्राह्मण दास-वृत्ति पर उतर पड़े हैं। लोभ वश धर्म भी बिकने की वस्तु होगया है। स्वर्ग, पुत्र, धन, यश, विजय और मोक्ष सब की सब टकों से खरीदी जा सकती है। जिसे देखो वह धन के लिये अन्धा बन रहा है। धन का मुख्य और अधर्म को गौण स्थान दिया जा रहा है। धनवान चाहे जितना भी पाप करे किन्तु ब्रह्म-भोज और गोदान कराकर धर्मात्मा बना रह सकता है। मूर्ख लोग ऐसे धर्म की पशुबल द्वारा रक्षा करना चाहते है। कैसी विडम्बना! आश्चर्य की बात तो यह है कि जो लोग व्यर्थ की बातों पर परस्पर सिर फोड़ते है वे ही आततायियों को देखकर दुम दबा कर घर मे घुस जाते हैं। सच्चा धार्मिक पुरुष वह है जो अपनी बलि चढ़ा कर धर्म की रक्षा करता है। धर्मोन्माद से उत्तेजित हो अधर्म करना धर्माचरण नही कहलाता। धर्म की पिपासा दूसरों के रक्तपात से नही बुझती, किन्तु उसके लिये आत्म बलिदान करने से शान्त होती है।

अवतार वाद (कमला के मुख से)

जो संसार के समस्त कर्तव्य कर्मों को ईश्वर के कर्म समझ कर करता है, आसुरी वृत्तियों का नाश करता है, दीनों की रक्षा करता है वही ईश्वर का अवतार है। अतः प्रत्येक पुरुष को अधिकार है कि वह राम और कृष्ण के समान जगत पूज्य बन सके, और ऐसा स्वानुभूति को जागृत करने से सम्भव हो सकता है।

दासता किस देश के पल्ले पड़ती है? (पर्णदत्त के मुख से)

जिस देश के युवक कुल बधुओं का अपमान सामने देखते

हुए भी अकड़ कर चले, वाल सँवार, स्वच्छ कपड़े पहन, घमंड से तने हुए गलियों मे फिरे और देश के नाना विपत्तियों में निमग्न रहते हुए भी निराली धज वनाये विलासमय जीवन वितावे, उस देश का दासता की जंजीरों में जकड़ा जाना अनिवार्य है।

देश की सम्पत्ति वास्तव में किसकी ?(पर्णदत्त के मुखसे)

देश-वासियो की। धनवानों का धन देश वासियो की धरोहर है। वह भूखों को अन्न. नंगा को वस्त्र, रोगियो को औषधि वितरण करने के लिये है न कि उनके लिये विलास की सामग्री जुटाने के लिये।

शासकवर्ग का उत्तरदायित्व ( पर्णदत्त के मुख से ).

त्रस्तप्रजा की रक्षा करना। सतीत्व का सम्मान। देवता, व्राह्मण और गौ की मर्यादा मे विश्वास। आतंक से प्रकृति (रिआया) को आश्वासन।

राज-कर का प्रयोग (मातृ गुप्त के मुख से):

प्रजा की रक्षा मे व्यय होना। यदि किसी की चोरी का पता राज कर्मचारी न लगा सकें तो वे अपने वेतन से उसकी पूर्ति करदें। यदि उनके वेतन से ऐसा होना असम्भव हो तो राज-कोष से, जिसमे राज-कर जमा होता है, चोरी गये माल के मूल्य के वरावर धन दिया जाय।

देश के युवक और युवतियों का कर्तव्य: स्कन्द और देवसेना की भाँति अविवाहित और संयम का जीवन विताते हुए देश को स्वतंत्र वनाने का सत्य संकल्प करना। दीन दुखियो का कष्ट निवारण करने का प्रयत्न करना, अनाथ वालक वालिकाओं के पालन पोषण का प्रवन्ध करना, शिक्षा का प्रसार, सामाजिक

कुरीतियो का दूरीकरण आदि आदि समाज सुधार के कार्य करना।

## लेखक का स्वातंत्र्य-प्रेम

सच बात तो यह है कि स्कन्दगुप्त नाटक आदि से अंत तक स्वाधीनता और स्वातंत्र्य-प्रेम से ओत-प्रोत है। कोई भी सत्पात्र ऐसा न मिलेगा जिसके मुख से दो चार शब्द इस विषय के न निकले। ऐसा जान पड़ता है कि यह नाटक लिखा ही इस उद्देश्य से गया है कि देश के प्रत्येक युवक और युवती के हृदय मे स्वातंत्र्य-प्रेम की ज्योति जगमगा उठे। भीति बन्धन से छुट कारापाने के लिये ईश-प्रार्थना कितनी मर्म भरी है।

बजादो वेणु मन मोहन! बजा दो।
हमारे सुप्त जीवन को जगादो।
विमल स्वातंत्र्य का बस मंत्र फूंको
हमे सब भीति-बन्धन से छुड़ादो।
सहारा उन उँगलियो का मिले हाँ
रसीले राग मे मन को मिलादो।
तुम्ही सत हो इसी की चेतना हो
इसे आनन्दमय जीवन बनादो।
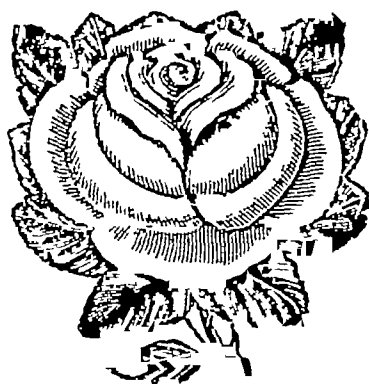
# स्कन्द-गुप्त नाटक के पात्र

## स्कन्दगुप्त:-

नाटक का प्रधान पात्र एवं नायक। महाराज कुमारगुप्त की ज्येष्ठरानी देवकी के गर्भ से उत्पन्न, साम्राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी युवराज। धीर, वीर और गम्भीर। अधिकार-लिप्सा से कोसो दूर। अपने तईं प्रजा की ढाल और आर्य्य-राष्ट्र का सच्चा सेवक समझने वाला। स्वभाव का बड़ा विनम्र और अभिवादनशील। साम्राज्य के पुराने राज भक्त कर्मचारियों पर हार्दिक श्रद्धा और विश्वास रखने वाला।

स्कन्द, वीर शिरोमणि, क्षत्रिय धर्म के गहन सिद्धान्तों से भी अनभिज्ञ नहीं। सन्धि नियमों का यथावत पालन करना और शरणागत की रक्षा के लिये सर्वदा सन्नद्ध रहना वह अपना पर्म कर्तव्य समझता है। दूत द्वारा यह समाचार पाकर वर्वर हूणों ने मालव नरेश वन्धुवर्मा पर आक्रमण किया है और साम्राज्य से सहायता मांगी गई है वह सेनापति पर्णदत्त को पुष्यमित्रों की गति अवरोध के लिये छोड़े स्वयं अकेला मालव की रक्षा के लिये सन्नद्ध हो जाता है और सहसा कह उठता है "जाओ निर्भय निद्रा का सुख लो। स्कन्द के जीते जी मालव का कुछ न बिगाड़ सकेगा।"

मातृशक्ति का स्कन्द अगाध भक्त है। देवियों के मान प्रतिष्ठा और सतीत्व की रक्षा करना वह अपना धार्मिक कर्तव्य समझता है। अवन्ति के दुर्ग पर शक और हूणों की सम्मलित सेनाओं का आक्रमण होता है। वन्धुवर्मा युवराज स्कन्द गुप्त से कोई निश्चित

समाचार अभी तक न आ सकने पर कुछ अधीर सा हो रहा है। मालवेश्वरी जयमाला स्कन्द गुप्त का अभिनय करने और दुर्ग-रक्षा का भार अपने ऊपर लेती हुई पतिदेव को शत्रुसेना पर सिंह-विक्रम से टूट पड़ने का आदेश करती है। दुर्ग का द्वार टूटता है। भीम आक्रमणकारियों की बाट रोकने को दौड़ता है। जयमाला और देवसेना छुरी निकाल आत्म रक्षा के लिये प्रस्तुत होती है। इसी बीच में सैनिकों सहित दैवात स्कन्द का प्रवेश होता है। शक और हूण स्तम्भित से रह जाते हैं "स्कन्द के जीवित रहते स्त्रियों को शस्त्र नहीं चलाना पड़ेगा।"

त्याग की तो स्कन्द जीवित मूर्ति है। इसी को वह संसार में सब से महान वस्तु समझता है। प्राणों तक का मोह त्याग करना वह वीरता का रहस्य समझता है। उसका सहचारी युद्ध-सखा चक्रपालित भगवद्वाक्य 'युद्धस्व विगतज्वरः' का स्मरण करता है। किन्तु स्कन्द ऐसे जीवन को आत्मविडम्ब समझता है, उसकी समझ में मानव जीवन का कोई और ही निगढ़ रहस्य है। चक्र द्वारा उत्तेजित किये जाने पर भी वह राम-वत् गृह-कलह पसन्द नहीं करता। पुरुगुप्त के सिंहासनारूढ़ होने से उसे हार्दिक प्रसन्नता है उसकी विमाता अनन्त देवी ने केकई का अभिनय करने में कोई कसर उठा न रक्खी। पुरुगुप्त और उसके पक्ष-पोशक भटार्क ने कुछ कम नीचता प्रदर्शित न की। फिर भी स्कन्द स्कन्द ही सिद्ध हुआ। विजई होकर भी प्रतीकार का लेशमात्र विचार मन में न आने दिया। स्वयं अजीवन ब्रह्मचारी रहने का भीषण व्रत धारण किया और पुरुगुप्त को ही अपना उत्तराधिकारी नियत किया।

स्कन्द द्वारा मालव की हूणों से रक्षा हो जाने पर मालव धिपति बन्धुवर्मा मालव का राज सिंहासन स्कन्द गुप्त को समर्पण

कर स्वयं एक वीर सैनिक की वृत्ति स्वीकार करता है किन्तु स्कन्द सम्राट बनने के स्थान मे एक सैनिक रहना ही पसन्द करता है।

क्षमाशील भी स्कन्द प्रथम श्रेणी का है। पुनः पुनः अपराध करने पर भी शर्वनाग, भटार्क आदि को प्राण दान देता है और गुप्त साम्राज्य की समृद्धि का सदैव ध्यान रखने की उन्हे प्रेरणा करता है।

साम्राज्य-वैभव उसके अन्दर राजमद उत्पन्न करने मे कभी समर्थ नही हुआ। वह सदैव बौद्धो के निर्वाण, योगियो की समाधि और पागलो की सी विस्मृति का इच्छुक रहा। वह अपने को जगन्नियन्ता के हाथ का खिलौना ही समझता रहा और राज-मुकुट को श्रमजीवी की टोकरी से भी तुच्छ।

स्कन्द सच्चा मातृ-भक्त है। इसी भक्ति ने उसे जननी जन्म-भूमि का उत्कट प्रेमी भी बनाया। "माँ! तुम्हारी गोद से पलकर भी तुम्हारी सेवा न कर सका।" यह पश्चात्ताप कितना मर्म-स्पर्शी है।

सत्य-संकल्प और दृढ़-प्रतिज्ञ इतना कि प्रलोभनो का झंझानिल उसके मनः सुमेरु को चलायमान करने मे विफल-प्रयत्न ही रहा। विजया अपनी अनन्त धनराशि का उत्कोचन दिलाती है, मालव और सौराष्ट्र स्वतत्र करा देने का वचन देती है। किन्तु सत्यसन्ध स्कन्द सुख के लोभ से, मनुष्य के भय से उत्कोच देकर क्रीत साम्राज्य की अभिलाषा नही करता। 'भरे यौवन और प्रेमी हृदय विलास' के समस्त उपकरण निस्सार सिद्ध होते है। सत्य-प्रतिज्ञा की निश्चल शिला टस से मस नहीं होती। विजया की आत्म-हत्या तक उसे अपने दृढ़ निश्चय से विचलित न कर सकी। लेखक ने बन्धुवर्मा के मुख से स्कन्द का कैसा सुन्दर सजीव चित्र खीचा है:

"उदार-वीर-हृदय, देवोपम सौन्दर्य्य तत्कालीन आर्य्यावर्त का एक मात्र आशा-स्थल, विशाल मस्तक, अन्तःकरण से तीव्र, अभिमान के साथ विराग, आँखों में जीवन-पूर्ण ज्योति, वीर और परोपकारी।" कुभा पार करते समय स्कन्द के बह कर अदृश्य हो जाने का समाचार पाकर अन्त मे स्वयं भटार्क तक शोकाकुल हुए विना न रह सका हाय! ऐसा वीर, ऐसा उपयुक्त और ऐसा परोपकारी सम्राट! परन्तु गया मेरी ही भूल से सब गया।

कुमारगुप्त वृद्धावस्था है। सती, पतिव्रता रानी देवकी के होते हुए भी द्वितीय विवाह किया है। फिर भी भोग-लिप्सा शान्त नहीं हुई। भारतीय नहीं, पारसीक नर्तकियाँ भी रख छोड़ी है। प्रायः आमोद-प्रमोद मे ही काल-यापन होता है। आपानकों से भी बड़ा प्रेम है। ऐसी दशा मे राज-कार्य्य की ओर से औदास्य अवश्यम्भावी ठहरा। वाह्य आक्रमणो से देश पादाक्रान्त है। आन्तरिक षड्यन्त्रो की भी कमी नहीं। चहुं ओर विप्लव सा मचा हुआ है। छोटी रानी अनन्तदेवी बड़ी रानी देवकी से उत्पन्न स्कन्द के स्थान मे स्वतनय पुरगुप्त को निष्कंटक उत्तराधिकार दिलाने का जी-जान से प्रयत्न कर रही है। स्वयं महादेवी तक को जीवित देखना नही चाहती। जिधर चाहती है महाराज की नकेल मोड देती है।

ऐसी अवस्था मे महाराज कुमार स्कन्दगुप्त अचानक बीमार पड़ते हैं। नवीन महाबलाधिकृत भटार्क, बौद्ध कापालिक प्रपंचबुद्धि और अन्तर्वेद का विषयपति शर्वनाग आदि यह षडयन्त्र रचते हैं कि यदि दैवात् महाराज का निधन हो जाय तो यह समाचार अत्यन्त गुप्त रक्खा जावे। कड़ा पहरा बिठा दिया जाय और युवराज स्कन्दगुप्त की अनुपस्थिति में, जो पुष्य

मित्रों से युद्ध के लिए भेजे गये थे, पुरगुप्त को राज-सिंहासन पर बिठा दिया जाय। महाराज का शरीरान्त हो जाता है। मंत्री कुमारामात्य पृथ्वीसेन, महाप्रतिहार एवं दंडनायक से, जो गुप्त साम्राज्य के सच्चे राज-भक्त सेवक हैं और स्कन्द के पक्षपाती थे, शस्त्र रखकर पुरगुप्त को सम्राट स्वीकार करने को कहा जाता है। प्रतिहार उत्तेजित हो शस्त्र ग्रहण करने को उद्यत हो उठता है, किन्तु पृथ्वीसेन अन्तर्विद्रोह को राष्ट्र के लिए घातक समझ उसे रोक देता है और तीनों के तीनों स्वयमेव आत्मघात कर लेते हैं।

गोविन्दगुप्त महाराज कुमारगुप्त का छोटा भाई और स्कन्द गुप्त का चचा। गुप्त-साम्राज्य का अत्यन्त हितैषी। स्कन्द के गुणों पर अत्यन्त मुग्ध और उसके पक्ष का दृढ़ समर्थक। भतीजे की प्रशंसा में गोविन्द' के हृदय की भावना का कैसा प्रत्यक्षीकरण हो रहा है। "वीर पुत्र है। स्कन्द! आकाश के देवता और पृथ्वी की लक्ष्मी तुम्हारी रक्षा करें। आर्य्य-साम्राज्य के तुम्हीं एक मात्र भरोसा हो।"

गोविन्दगुप्त किस उच्चकोटि का वीर योद्धा होगा इसका पता उसके निम्नांकित शब्दों से चलेगा। भटार्क को फटकारते हुए—"कृतघ्न! वीरता उन्माद नहीं है. आँधी नहीं है जो उचित-अनुचित का विचार न करती हो। केवल शस्त्रबल पर टिकी हुई वीरता बिना पैर की होती है। उसकी दृढ़ भित्ति है न्याय।"

गोविन्द के हृदय में स्त्रियों के लिए उचित सम्मान है। राष्ट्रों का उत्थान वीर-प्रसवा देवियों पर निर्भर है इसका उसे अटल विश्वास है। "मैं इस कृतघ्न की माता हूं।"—ऐसे शब्द भटार्क की

माता कमला के मुख से सुनकर गोविन्द बोले—"धन्य हो देवी! तुम जैसी जननियाँ जब तक उत्पन्न होंगी तब तक आर्य्य-राष्ट्र का विनाश असम्भव है।"

महादेवी देवकी के हृदय के उल्लास का अनुमान नहीं लगाया जा सकता जब कि उसने स्कन्द के लिए गोविन्द के ये आशीर्वचन सुने होंगे—"तुम्हारी कोख से पैदा हुआ यह रत्न, यह गुप्त-कुल के अभिमान का चिह्न सदैव यशोमंडित रहेगा।"

विदेशी हूणों द्वारा नाना प्रकार के अत्याचारों से सुरक्षित रहने के लिए गोविन्दगुप्त की यही हार्दिक इच्छा थी कि देश का बच्चा-बच्चा सैनिक छोड़कर और कुछ न बने।

गोविन्द को पद-लोलुपता से कोसों दूर पाते हैं। मालवेश बन्धुवर्मा की राजधानी उज्जयिनी में स्कन्दगुप्त का राज्याभिषेक हुआ। महाराज के चचा साहब के अतिरिक्त अन्य कौन महाबलाधिकृत होने का उच्चपद प्राप्त कर सकता था? किन्तु गोविन्दगुप्त की निस्स्वार्थ सेवा सराहनीय है। बन्धुवर्मा के प्रति ये शब्द कितने आत्मोत्सर्ग के द्योतक हैं

"वीर! इस वृद्ध में साम्राज्य के महाबलाधिकृत होने की क्षमता नहीं, तुम्हीं इसके उपयुक्त हो।"

आर्य्य-संस्कृति का सच्चा रक्षक। इसी की रक्षा के लिए जिया और इसी के लिए प्राणों की आहुति दी।

पुरगुप्त- छोटी रानी अनन्तदेवी की कोख से उत्पन्न महाराज कुमारगुप्त का छोटा पुत्र। समस्त अन्तर्विग्रह का मूल कारण। इसी को उत्तराधिकार दिलाने के लिए नाना षड्यंत्रों की रचना हुई। बड़ी महारानी देवकी के प्राणान्त के लिये गुप्त मंत्रणायें की

गईं। विविध प्रकारके प्रपंच रचे गये। स्वयं स्कन्द को पृथ्वीतल से मिटाने के भीषण उपाय सोचे गये। किन्तु भाग्यचक्र किसी के हाथ में नहीं। फिर फिर कर विफलता का मुख देखना पड़ा। कई वार लज्जित होना पड़ा। विशाल-हृदय स्कन्द ने सिवाय क्षमा दान के अन्य किसी प्रकार का दंड देना अनुचित समझा। नहीं, नहीं स्वयं आजीवन अविवाहित रहने की भीषण प्रतिज्ञा करके अपना उत्तराधिकारी भी इसी को बनाया।

स्वार्थ-सिद्धि के लिए उचित-अनुचित का ध्यान रखने वाला। पृथ्वीसेन, महाप्रतिहार और दंडनायक जैसे साम्राज्य के सच्चे स्वामि-भक्त सेवकों के आत्मघात कर लेने पर भटार्क जैसे अर्थ-लोलुप पुरुप को पश्चात्ताप हुआ किन्तु पाषाण हृदय पुरगुप्त के मुख से यही निकला "पाखंड स्वयं विदा हो गये- अच्छा ही हुआ।"

आनन्द प्रमोद का जीवन विताने वाला। विलास-प्रियता में ऐसा चूर कि राष्ट्र के चहुं ओरसे शत्रु पादाक्रान्त होने पर भी, आपत्तियों की घनघोर घटाओं के घिर आने पर भी, युद्ध की आयोजनाओं के बदले कुसुमपुर मे आपानकों का समारोह पाते हैं। राजधानी विलासिता का केन्द्र बनो हुई है। राष्ट्र-भक्त सैनिकोंसे यह महा अनर्थकारी दृश्य नहीं देखा जाता। वे नायकत्व से त्याग-पत्र देते हैं, किन्तु मगध जैसे विशाल राष्ट्रकी बागडोर के लिए स्पर्धा करनेवाला पुरगुप्त मद्य की पीनक मे भटार्क से कहता है—"आओ मित्र! हम तुम कादम्ब पिये। जाने दो इन्हे।"

**बन्धुवर्मा** मालव प्रदेश का अधिपति। गुप्त-साम्राज्य का आश्रित मित्र। स्कन्द का अनन्य भक्त। आर्य्य-राष्ट्र की मान-मर्यादा

की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग करने में अद्वितीय। शरणागत और विपन्न की रक्षा का पूर्ण ध्यान रखनेवाला। शक और हूणों की सम्मिलित वाहिनी से लोहा लेने के लिए जा रहा है किन्तु धन-कुबेर कन्या विजया की चिन्ता स्वधर्म-पत्नी जयमाला और भगिनी देवसेना से अधिक है।

कृतज्ञ हृदय इतना कि सहायक के प्रत्युपकार में न केवल अपना राज-पाट अपितु प्राण तक समर्पित किया। मालव प्रदेश यद्यपि पैत्रिक सम्पत्ति थी, किन्तु स्कन्द द्वारा हूणों के सम्मिलित आक्रमण से परित्राण हो जाने पर अब उसे स्कन्द की ही न्याय-युक्त वस्तु समझता है और स्वयं स्वामि भक्त सैनिक की भाँति सेवा द्वारा उपकारी से उऋण होना चाहता है। धर्मपत्नी जयमाला प्रस्ताव का विरोध करती है। बन्धुवर्मा शिर झुका लेते हैं और ऐसे मार्मिक शब्द-शरों से प्रिया को आवेधित करते हैं कि बेचारी को लज्जित हो अनुमति देनी ही पड़ती है "तुम कृतघ्नता का समर्थन करोगी वैभव और ऐश्वर्य्य के लिए ऐसा कदर्य्य प्रस्ताव करोगी, इसका मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था। यदि होता, तब मैं इस कुटुम्ब की कल्पना को दूर ही से नमस्कार करता और आजीवन अविवाहित रहता।"

बन्धुवर्मा के वीर हृदय का अनुमान उसी के शब्दों से लगाया जा सकता है "क्षत्रिये! जो केवल खड्ग का अवलम्ब रखने-वाले हैं, सैनिक हैं, उन्हे विलास की सामिग्रियों से लोभ नहीं रहता। शरीर-पोषण के लिए क्षत्रियों ने लोहे को अपना आभूषण नहीं बनाया है।" छोटे भाई के लिये प्रत्युत्तर वीरत्व से छलका पड़ता है "भीम! क्षत्रियों का कर्तव्य है आर्त-त्राण परायण होना, विपद का हँसते हुए आलिंगन करना, विभीषिकाओं

की मुसक्याकर अवहेला करना और विपन्नो के लिए अपने धर्म के लिए, देश के लिए प्राण देना।"

विनयशीलता और स्वदेश-प्रेम की सजीव-मूर्त्ति। महाराज स्कन्दगुप्त के चचा गोविन्दगुप्त बन्धुवर्मा के अलौकिक आत्मोत्सर्ग की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उसे साम्राज्य का महाबलाधिकृत बनाये जाने का प्रस्ताव उपस्थित करते हैं। किन्तु 'वन्धु' महोदय का विनम्र उत्तर सुनते ही बनता है 'अभी नहीं आर्य्य! आपके चरणों मे बैठकर यह बालक स्वदेश-सेवा की शिक्षा ग्रहण करेगा। मालव का राजकुटुम्ब एक एक बच्चा आर्य्य-जाति के कल्याण के लिए जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत है। आप जो आज्ञा देंगे वही होगा।" "बन्धुवर्मा जी" तुम धन्य हो। देश को आज तुम जैसे ही अनेक बन्धुओं की आवश्यकता है।

**भीमवर्मा** मालव के राजा बन्धुवर्मा का भ्राता। वीर और साहसी। स्त्रियों की मान-मर्यादा का उचित ध्यान रखनेवाला। शक और हूणों की सम्मिलित सेनाएँ मालव पर आक्रमण करती हैं और दुर्ग का द्वार टूटता है। अन्तःपुर की रक्षा का भार भीम पर छोड़ बन्धुवर्मा पहले ही शत्रु का सामना करने जा चुका था। सहायतार्थ स्कन्द के आने में विलम्ब हुआ। शत्रु-सेना गुप्त मार्ग से दुर्ग में घुसती है, और भीम वीरों के वरणीय पद को प्राप्त करने के लिए किस फुर्ती से प्रस्तुत होता है और स्कन्द के आने तक शत्रु दल से डटकर लोहा लेता है।

भीम अपने ज्येष्ठभ्राता बन्धुवर्मा का आर्योचित सम्मान करता है। बन्धुवर्माकी इच्छा होती है कि आर्य्य-राष्ट्र के हितार्थ मालव

के राज-सिंहासन पर 'स्कन्द' का अभिषेक कराया जाय। भीम की अनुमति माँगी जाती है। उत्तर भी कितना विनम्र "तात! आप की इच्छा; मैं आपका अनुचर हूं।"

विपद्-ग्रस्त आर्य्यावर्त के हित में स्वार्थ की बलि चढ़ाने के लिए सर्वदा उद्यत। स्कन्द के राज्याभिषेक वाले प्रस्ताव से भीम तो सहमत था ही। कुछ अड़चन थी, तो जयमाला की थी। उसका प्रस्ताव होता है— स्वार्थ पहले, परमार्थ पीछे। पर देखिये, किन प्रेम भरे शब्दों में भाभी जी को समझाया जा रहा है—

"भाभी! अब तर्क न करो। समस्त देश के कल्याण के लिए एक कुटुम्ब की भी नहीं; उसके क्षुद्र स्वार्थों की बलि होने दो। भाभी! हृदय नाच उठा है, जाने दो इस नीच प्रस्ताव को। देखो! हमारा आर्य्यावर्त्त विपन्न है, यदि हम मर मिटकर भी इसकी कुछ सेवा कर सकें।"

भटार्क मगध राष्ट्र का नवीन महाबलाधिकृत। छोटी रानी अनन्तदेवी के हाथ की कठपुतली। अतः पुरगुप्त का पक्ष-पोषक। स्वार्थ-सिद्धि के लिए स्वदेशाभिमान और स्वराष्ट्र-रक्षा की तिल भर चिन्ता न करनेवाला। चापलूस अव्वल दर्जे का। बड़ी रानी देवकी के होते हुए भी छोटी रानी अनन्तदेवी को 'महादेवी' कहते लज्जित नहीं होता। उसी की जय मनाता है। अनन्तदेवी स्वयं इसे परिहास समझती है और कहती है "देवकी के रहते किस साहस से तुम मुझे महादेवी कहते हो?" उत्तर भी कितना खुशामदी! "हमारा हृदय कह रहा है और आये दिन साम्राज्य की जनता, प्रजा, सभी कहेगी।" अनन्तदेवी ने भी खूब ही भाँपा। "मुझे विश्वास नहीं होता।"

अपने मुँह मिट्ठू बनने में भी अत्यन्त निपुण। "बाहुबल से, वीरता से और अनेक प्रचंड पराक्रमों से ही मुझे मगध के महाबलाधिकृत का माननीय पद यह मिला है महादेवी! आज मैंने अपने हृदय के मार्मिक रहस्य का अकस्मात् उद्घाटन कर दिया है। मेरा हृदय शूलों के लौह फलक सहने के लिए है, क्षुद्र विष-वाक्य-बाण के लिए नहीं। माता कमला द्वारा यह सुनकर कि मुझे इसका दुःख है कि मैं मर क्यों न गया। भटार्क! तेरी माँ को एक ही आशा थी कि पुत्र देश का सेवक होगा, मेरा सिर ऊँचा करेगा आदि. वह कहता है "क्या मेरी खड्गलता आग के फूल नहीं बरसाती? क्या मेरे रणनाद वज्र-ध्वनि के समान शत्रु के कलेजे नहीं कँपा देते? क्या तेरे भटार्क का लोहा भारत के क्षत्रिय नहीं मानते?"

नीच इतना कि अर्ध रात्रि मे निस्सहाय अबला महादेवी देवकी की हत्या के उद्देश्य से शर्वनाग के साथ चोरी-चोरी राजमहल मे घुसता है और स्कन्दगुप्त के अचानक प्रवेश हो जाने पर वीरोचित व्यवहार की याचना करते लज्जित नही होता।

स्वभाव में दृढ़ता का नाम नही। उज्जयिनी मे सम्राट स्कंद-गुप्त का अभिषेक होने वाला था। उसमे विफलता उत्पन्न करने की प्रपंच रचना की इच्छा से वहाँ पहुँचता है। दैवयोग से भंडा-फोड़ हो जाने पर बन्दी हो जाता है। विशाल हृदय स्कन्द उसे केवल लज्जित कर क्षमा प्रदान करता है। उपकारी का प्रत्युपकार करने की क्षणिक बुद्धि होती है। किन्तु दुष्ट प्रपंचबुद्धि का प्रपंच उसे सहज ही मे फुसला लेने मे समर्थ हो जाता है। भटार्क के मुख से यह शब्द सुनकर कि 'मै इतना नीच नही हूँ कि उपकारी के उपकारो का स्मरण भी न करूँ' प्रपंचबुद्धि ने ठीक ही कहा

"परन्तु मैं तुम्हारी प्रवृत्ति जानता हूँ। तुम इतने उच्च भी नहीं हो।"

भावी उत्कर्ष के प्रलोभन-पाश में वह पुनः जकड़ दिया गया। साध्वी देवसेना की बलि चढ़वाने को उद्यत हो गया। उसकी अन्तर्हृदय-पीड़ा स्वयं उसे वेध रही है

"ओह! पाप-पंक में लिप्त मनुष्य को छुट्टी नहीं। कुकर्म उसे जकड़कर अपने नाग-पाश में बांध लेता है!! दुर्भाग्य!"

देश-द्रोह में जयचन्द का बड़ा भाई। जयचन्द ने अपमानित होकर पृथ्वीराज के विरुद्ध यवनराज मुहम्मद गौरी को निमंत्रित किया, इस नीच ने उपकृत होने पर सम्राट स्कन्दगुप्त के विरुद्ध हूण-राज खिंगिल द्वारा भारत पर आक्रमण कराया। उसकी जघन्य करतूत की बानगी उसी के शब्दों में मिलेगी। खिंगिल को प्रमाणपत्र लिख रहा है

"हूणों को एक बार ही भारतीय सीमा से दूर करने के लिए स्कन्दगुप्त ने समस्त सामन्तों को आमन्त्रण दिया है। मगध की रक्षक सेना भी उसमें सम्मिलित होगी और मैं ही उसका परिचालन करूँगा। वही इसका (पैशाचिक देश-द्रोह का) प्रत्यक्ष प्रमाण मिलेगा।"

बौद्ध संघों को स्कन्द के विरुद्ध भड़काने और विप्लव करने के लिए इसी दुष्ट ने उकसाया। कुभा का बन्ध तोड़ना चाहिये था जब कि हूण सेना उसे पार कर रही थी, किन्तु ऐसा न करके उसे उस समय तोड़ा जब कि स्कन्द की सेना हूणों के आक्रमणों को रोकने जा रही थी। गुप्त सेना का अधिकांश बह गया और स्वयं स्कन्द बाल-बाल बचा।

इसके निकृष्ट चरित्र का परिचय उसकी साध्वी माता कमला की फटकार से मिलता है

"तू देश-द्रोही है। तू राज-कुल की शान्ति का प्रलय-मेघ बन गया; और तू साम्राज्य के कुचक्रियो में से एक है। ओह! नीच! कृतघ्न!! कमला कलङ्किनी हो सकती है, परन्तु यह नीचता, कृतघ्नता उसके रक्त मे नहीं!"

देश-द्रोहियो के प्रति वृद्धा भारतमाता के भी ठीक यही शब्द हो सकते हैं।

पर्णदत्त मगध का महानायक। गुप्त-साम्राज्य का सच्चा स्वामि-भक्त सेवक। क्षात्र धर्म की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए सर्वदा मर मिटने को उद्यत। वीर माता के स्तन्य को कदापि लज्जित न होने देने वाला। भटार्क का बीसों विस्वे प्रतिलोम। प्रजा की रक्षा, सतीत्व के मान, गौ और ब्राह्मणो का सच्चा पुजारी, धर्म-मर्यादा का सर्वदा तन-मन से पालक।

पूर्व महाबलाधिकृत वीरसेन का स्वर्गवास हो गया है। वृद्ध महाराज स्वराजधानी अयोध्या को छोड़ भोग-विलास-लिप्सा की तृप्ति के लिए कुसुमपुर चले गये हैं। राज-कार्यों से विमुखता का जो दुष्परिणाम होता है उससे मगध का सुदृढ़ गुप्त साम्राज्य भी कब बच सकता था? आन्तरिक षड़यत्र रचे जा रहे हैं। बाह्य आक्रमणों की प्रतिक्षण आशंका की जा रही है। कपिशा श्वेत हूणो द्वारा पादाक्रांत हो चुकी है। बड़ी विकट समस्या उपस्थित है। तिस पर भी युवराज स्कंदगुप्त की स्वाधि-कारों के उपयोग के प्रति उदासीनता। चिन्ता यदि सता रही है तो केवल एक मात्र सच्चे राष्ट्र-हितैषी पर्णदत्त को। चापलूसों की

भाँति हाँ मे हाँ मिलाना 'पर्ण' ने नहीं सीखा। आवश्यकता पड़ने पर तीखे और अप्रिय वाक-शरों का प्रयोग करना भी वह भली भांति जानता है। कैसे स्पष्ट और निर्भय शब्द हैं

"युवराज! आप अपने अधिकारों के प्रति उदासीन हैं। गुप्त-साम्राज्य के भावी शासक को अपने उत्तरदायित्व का ध्यान नहीं। स्कन्द के श्रीमुख से यह सुनकर:

"सेनापते! प्रकृतिस्थ होइये। परम भट्टारक महाराजाधिराज, अश्वमेध पराक्रम, श्रीकुमारगुप्त महेन्द्रादित्य की सुशासित राज्य की सुपालित प्रजा को डरने का कारण नहीं है।" गुप्त-सेना की मर्य्यादा की रक्षा के लिए पर्णदत्त-सदृश महावीर अभी प्रस्तुत है। 'पर्ण' के हृदय में आग जल उठती है। फिर भी कैसे गम्भीर और मर्म भरे शब्दों का प्रयोग करता है

"राजनीति, दार्शनिकता और कल्पना का लोक नहीं है। इस कठोर प्रत्यक्षवाद की समस्या बड़ी कठिन होती है।"

मानों खुले शब्दों मे कह रहा है कि 'परम भट्टारक', 'अश्वमेध पराक्रम', 'महेन्द्रादित्य' आदि-आदि शाब्दिक पराक्रम केवल भुलावा मात्र है। कोरे स्वप्नो से राष्ट्र का सर्वनाश हुआ रक्खा है। आँखे खोलकर प्रत्यक्ष देखो कि वस्तु-स्थिति क्या है। साम्राज्य-श्री अनायास और अवश्य अपनी शरण आनेवाली वस्तु नहीं।' युवराज! साम्राज्य को 'गले पड़ी' वस्तु न समझिये। 'अधिकारों का प्रयोग किस लिए?' अब ऐसा कहने से काम न चलेगा। राजनीति-विशारद विदुर ने ठीक ही तो कहा था

बहवः पुरुषा राजन्! सततं प्रिय वादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ 'पर्ण' दूर-दर्शी भी प्रथम श्रेणी का है। 'पर्ण' और स्कन्द के संवाद के मध्य ही पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित का अचानक आगमन होता है। 'पर्ण' चक्र से युवराज की उदासीनता की शिकायत करता है और उनके शब्द 'अधिकार किस लिए?' की कुछ हँसी उड़ाना चाहता है। 'चक्र' उत्तर देता है 'इस किस लिए का अर्थ मैं समझता हूं।'

पर्णदत्त—क्या ?

चक्रपालित—'गुप्तकुल का अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम।'

इस पर पर्ण एक दम चक्र को सावधान करता है और उसे अपनी चंचलता से साम्राज्य के लिए विष-वृक्ष का बीज बनने से रोकता है। 'पर्ण' जानता था कि ऐसे समय मे जब कि विदेशीय हूणो के सम्मिलित आक्रमणो के नित्य समाचार आ रहे थे, गृह-कलह और अनन्त देवी का षड्यन्त्रों का भंडा-फोड़ करना राष्ट्र-हित के लिए घातक सिद्ध होगा। अंतर्विद्रोह को प्रकट रूप देने से रोकने मे उसने भरसक प्रयत्न किया।

आर्य्य-राष्ट्र को विदेशी हूणो के फौलादी चुगल से छुटाने के लिए वृद्ध पर्णदत्त ने जिस अलौकिक आदर्श आपद्धर्म का अवलम्बन किया, उसका दिग्दर्शन लेखक ने बड़ी कुशलता-पूर्वक देवसेना और स्कन्द के श्रीमुखो द्वारा कराया है—

देवसेना "मै अपने लिए ही (भीख) नहीं माँगती देव। आर्य्य पर्णदत्त ने साम्राज्य के बिखरे हुए सब रत्न एकत्र किये है। वे सब निरवलम्ब हैं। किसी के पास टूटी हुई तलवार ही बची है, तो किसी के जीर्ण वस्त्र खंड। उन सब की सेवा इसी आश्रम मे होती है।"

स्कन्द "वृद्ध पर्णदत्त ! तात पर्णदत्त ! तुम्हारी यह दशा ! जिसके लोहे से आग बरसती थी वह जंगल की लकड़ियां बटोरकर आग सुलगाता है।"

वृद्ध पर्णदत्त के मिस से वृद्ध भारत की कैसी दयनीय प्रतिमूर्त्ति उपस्थित की गई है।

एक सच्चे देशभक्त की करुणा कहानी उसीके दग्ध हृदय से निस्सरित

"सूखी रोटियां बचाकर रखनी पड़ती है। जिन्हे कुत्तों को देते हुए संकोच होता था उन्हीं कुत्सित अन्नों का संचय।······ मै रोऊँगा नही। नही पर्ण ! रोना मत। एक बूंद भी आँसू आँखो मे न दिखाई पड़े। तुम जीते रहो, तुम्हारा उद्देश्य सफल होगा। भगवान यदि होंगे तो कहेंगे कि मेरी सृष्टि मे एक सच्चा हृदय था। संतोष कर उछलते हुए हृदय ! संतोष कर। तू रोटियो के लिए नहीं जीता, तू उसकी भूल दिखाता है जिसने तुझे उत्पन्न किया है। देश के बहुत से दुर्दशा-ग्रस्त वीर हृदयो का सेवा के लिए सब स्वांग भरना ही पड़ेगा। मै क्षत्रिय हूँ। मेरे इस आपद्धर्म के साक्षी रहना भगवन्।"

कितना वीर ! कैसी विलक्षण दृढ़ता !! कितना उत्कृष्ट आत्मत्याग !!! किस क़दर आशावादी !!! कितना धीर ! कैसा गम्भीर !! और कैसी अटूट श्रद्धामयी आस्तिकता !!! धन्य वृद्ध पर्णदत्त ! तू धन्य !! जीवन-लीला भी देशहित लड़ते-लड़ते ही समाप्त की। अपने प्राणों का मूल्य दे स्कन्द की रक्षा की।

चक्रपालित--मगध के महानायक आर्य पर्णदत्त का पुत्र और युवराज स्कन्दगुप्त का राज-भक्त सखा। 'चक्र' ने 'स्कन्द'

के साथ वैसा ही सख्य निभाया जो चक्र धर कृष्ण ने अर्जुन के साथ। 'स्कन्द' त्याग के राग अलापता है, और दिखलाता है राज्याधिकार प्राप्ति की ओर से उदासीनता। चक्रपालित का उत्तर कितनी स्फूर्ति जागृत करता है

"युवराज! सम्पूर्ण संसार कर्मण्यवीरों की चित्रशाला है। वीरत्व एक स्वावलम्बी गुण है। प्राणियों का विकास सम्भवतः इसी विचार के ऊर्जित होने से हुआ है। जीवन में वही तो विजयी होता है जो दिन-रात "युध्यस्व विगत ज्वरः" का शंखनाद सुना करता है।"

"स्कन्द" इस प्रकार के 'विगतज्वर-युद्ध' को विडम्बना समझता है और मानव-जीवन का लक्ष्य कुछ और ही माने बैठा है जो दुर्बलता का द्योतक है। 'चक्र' फौरन उसे सावधान करता है और तुच्छ प्राणों का मोह त्याग, अयोध्या के सूने सिंहासन को सुशोभित करने की प्रेरणा करता है। 'स्कन्द' पुनः अपनी अयोग्यता प्रकट करता है, झगड़े में पड़ने से डरता और राज-सिंहासन ग्रहण करने की अनिच्छा प्रकट करता है। 'चक्र' उन समस्त अनर्थों की ओर संकेत करता है जो केन्द्र की राज्यशक्ति के अशक्त होने से प्रायः होने लग जाते हैं।

'चक्र' विचारों का साम्यवादी जान पड़ता है। वह रण में, वन में, विपत्ति में, आनन्द में सब के साथ समभागी बनना चाहता है। दुर्ग के सम्मुख कुभा के रण-क्षेत्र में स्कन्द के साथ डटा हुआ है और भटार्क के विश्वासघात की पद-पद पर स्कन्द को सूचना देता है।

किस समय क्या करना चाहिये इसका 'चक्र'को व्यावहारिक ज्ञान है। तुमुल युद्ध में बन्धुवर्मा वीर-गति को प्राप्त होता है।

स्कन्द को जो धक्का लगा वह अकथनीय है। मारे शोक के स्कन्द किंकर्तव्य-विमूढ़ हो बैठ जाता है। चक्र फौरन सचेत करता है और इस समाचार को आगे फैलने से एक दम रुकवा देता है और स्वयं दुर्ग की रक्षा के लिए उद्यत हो जाता है। विदेशी हूणों के साथ युद्ध में अन्त तक स्कन्द का साथ दिया।

प्रपंचबुद्धि—बौद्ध कापालिक। प्रपंच-रचना में दक्ष होना उसके नाम से ही सिद्ध है। अनन्तदेवी इस नर-पिशाच के स्वभाव से खूब परिचित है:

"सूची भेद्य अन्धकार में छिपनेवाली रहस्यमयी नियति का—प्रज्वलित कठोर नियति का नील आभरण उठाकर झाँकने वाला। उसकी आँखों में अभिचार का संकेत है, मुस्कराहट में विनाश की सूचना है, आँधियों से खेलता है, बातें करता है बिजलियों से आलिङ्गन।"

'प्रपंच' मारण, मोहन, उच्चाटनादि तांत्रिक क्रियाओं में कुशल, एवं उग्र-तारा का परम उपासक है और मनुष्यों की बलि चढ़ा कर नर-मेघ यज्ञ करने से नहीं हिचकता। देवी देवसेना भेंट हो ही चुकी थी यदि अचानक मातृगुप्त और स्कन्द का प्रवेश न हो जाता।

धर्म के विषय में 'प्रपंच', पौराणिक पंडित और मौलवियों की भाँति, कट्टर पंथी है। अहिंसा प्रधान, गौतम के शुद्ध पवित्र मत का अनुयायी होता हुआ भी यज्ञों में पशु-वध रोकने के लिए मनुष्य-वध का अनुमोदन करता है।

लोभ द्वारा धन लोलुप पुरुषों को फाँसने में 'प्रपंच' बड़ा निपुण है। शर्वनाग को महादेवी देवकी के वध के लिए प्रोत्साहित

किया जा रहा है। शर्व इसे अधर्म-कार्य समझ झिझकता है। किन्तु 'प्रपंच' अपने वाग्जाल मे ऐसा फाँसता है कि शर्व उस घृणित कार्य के लिए तत्पर हो जाता है।

'प्रपंच' मद्यपान भी खूब करता है और अपने सहचर शर्व-नाग और भटार्क को भी सम्मिलित कर नाच-रंग और भोग-विलास में निरत रहता हुआ भी उनका गुरुदेव बना हुआ है। वे उस पर अन्ध विश्वास करते हैं और जो भली-बुरी आज्ञा देता है उसे करने को उद्यत हो जाते है।

अस्थिरमति लोगों को बहकाने मे 'प्रपंचबुद्धि' शैतान का बड़ा भाई है। स्कन्द द्वारा क्षमा मिलने पर भटार्क उसका भक्त बन जाता है और विरोध छोड़ राष्ट्र की सेवा करने का संकल्प करता है। किन्तु 'प्रपंच' अपने प्रपंच मे उसे ऐसा फाँसता है कि वह फिर विदेशी शत्रुओं से मिलकर विश्वासघात करने लगा जाता है। स्कन्दगुप्त के विरुद्ध कुचक्र-रचना का प्रधान आचार्य 'प्रपंचबुद्धि' को ही समझना चाहिये।

शर्वनाग गुप्त-साम्राज्य की सेना का एक नायक, तदनन्तर अन्तर्वेद का विषयपति (गंगा-यमुना के बीच के देश का गवर्नर), तलवार का धनी। वीर, निर्भय, किन्तु स्वपत्नी रामा के कोप से सर्वदा भयभीत, जो उसे मूर्ख और गोबर-गणेश के नाम से विभूषित करती है। अपनी इस निर्बलता को वह स्वयं स्वीकार करता है —

"मैं क्रोध से गरजते हुए सिह की पूँछ उखाड़ सकता हूँ, परन्तु सिंहवाहिनी! तुम्हे देखकर मेरे देवता कूँच कर जाते है।"

'शर्व' वीर अवश्य है, पर दूरदर्शिता से दूर है। उसे कभी यह चिन्ता नहीं होती कि कौन आया और कौन गया, और

भविष्य में क्या होगा। प्रपंचबुद्धि से वह स्वयं अपनी इस न्यूनता को स्वीकार करता है

"मैं खड्ग हाथ में लिये प्रत्येक भविष्यत् की प्रतीक्षा करता हूँ। जो कुछ होगा, वही निबटा लेगा। विश्वास करना और देना, इतने ही लघु व्यापार से संसार की सब समस्याएँ हल हो जायँगी।"

'शर्व' धर्म-भीरु भी है, किन्तु गाँठ को बहुत कम रखता है। प्रपंची 'प्रपंचबुद्धि' शर्वनाग द्वारा महादेवी देवकी की हत्या कराना चाहता है। 'शर्व' चौंक उठता है और तत्काल "कदापि नहीं" कह उठता है। वह स्वयं मरने को तैयार है, पर 'निरीह हत्या' करना नहीं चाहता। वह अकेला सहस्र शत्रुओं से लड़ना पसन्द कर लेगा, पर अबला महादेवी की हत्या को कायरता समझता है। किन्तु जैसे अल्हड़ युवकों का स्वभाव होता है उसे भविष्यत् के सुखों का सब्ज बाग दिखाया जाता है और वह फन्दे मे फँस जाता है।

'प्रपंच' के चक्कर में पड़कर वह मद्यपान करना भी सीख लेता है, और 'भर भर जाम पिला मेरे साकी कर दे मतवाला' वाली उक्ति के अनुसार वह सचमुच मतवाला बन जाता है और गिर-गिर कर चोटे भी खाता है। इतना ही नहीं कादम्ब, कामिनी और काञ्चन की कामना-वश अपने आपको क्रीत-दास बना लेता है। उसकी पत्नी बहुतेरा समझाती है, फटकारती है; पर लोभ की पट्टी उसे कुछ सूझने नहीं देती और वह अपनी भार्या तक का प्राणान्त करने को उद्यत हो जाता है।

'शर्व' अन्त मे भटार्क आदि के साथ बन्दी होता है। बन्दी-गृह उसकी आँख खोलता है और अब वह अपने किये पर

पश्चात्ताप भी करता है। 'स्कन्द' द्वारा यह प्रश्न होने पर क्यों शर्व! तुम क्या चाहते हो? वह लज्जित हो कहता है

"सम्राट! मुझे वध की आज्ञा दीजिये, ऐसे नीच के लिए और कोई दंड नहीं है।"

पर कृपालु 'स्कन्द' साध्वी 'रामा' की खातिर उसे मुक्त करता है। 'शर्व' प्राण-दंड के लिए आग्रह करता है, अन्यथा आत्म-हत्या तक को उद्यत है। छुरी निकालना ही चाहता है कि 'स्कन्द' उसे रोक लेता है और माता देवकी के आदेश से अन्तर्वेद (गंगा-यमुना के बीच का प्रदेश) का विषयपति (गवर्नर) नियुक्त करता है। 'स्कन्द' का यह उपकार उसे अन्त तक आर्य-राष्ट्र का परम भक्त बनाये रखता है।

मातृगुप्त काव्य-कर्ता कालिदास। कवि-कुल सुलभ दारिद्रय का भोजन। केवल मात्र कवित्व उसके भूखे हृदय का आहार है। वर्णमय चित्र और भाव-पूर्ण संगीत से चित्त बहला लेना उसका एक मात्र साधन। अन्धकार को आलोक से, असत को सत से, जड़ को चेतन से, और वाह्य जगत् को अन्तर्जगत् से सम्बन्ध जोड़ना ही उसके जीवन का मुख्य व्यापार।

काश्मीर-मंडल मे विदेशी वर्वर हूणों का आतक हो जाने से शास्त्र और संस्कृत-विद्या का मान्य घट गया। बेचारे को स्वर्गादपिगरीयसी जननी-जन्म-भूमि को छोड़ राजधानी में आना पड़ा, और भूलना पड़ा प्रणयिनी मालिनी का मधु-मय स्वप्न। पीले पोखराज-केसे महल मे निवास करनेवाली 'नवनीत की पुतली' उससे सदा के लिए बिछुड़ गयी और दैन्य-जीवन के प्रचंड आतप में सुन्दर स्नेहमयी छाया का उसने आश्रय लिया।

राजधानी मे आकर युवराज स्कन्दगुप्त से उसका संपर्क होता है और उसके अन्तरङ्ग सहचरो मे स्थान प्राप्त करता है।

मातृगुप्त सच्चा ईश्वरभक्त है और असहाय अवस्था मे ईश-प्रार्थना के अतिरिक्त किसी अन्य साधन का आश्रय नही तकता। दूर पर बॅधे हुए नागरिको पर हूणा का नृशंसतापूर्ण अत्याचार देख उसका हृदय करुणा से गद्गद् हो उठता है और अकस्मात् ये दीन वचन मुख से निकल पड़ते है

उतारोगे अब कब भू-भार

बार-बार क्यो कह रक्खा था लूॅगा मै अवतार

उमड़ रहा है इस भूतल पर दुख का पारावार

बाड़व लेलिहान जिह्वा का करता है विस्तार

प्रलय-पयोधर बरस रहे है रक्त-अश्रु की धार

मानवता में राक्षसत्व का अब है पूर्ण प्रचार

पड़ा नही कानो मे अब तक क्या यह हाहाकार

सावधान हो, अब तुम जानो मै तो चुका पुकार

मातृगुप्त स्वतन्त्रता का प्रेमी है जैसा कि नृशंस हूणो द्वारा स्त्रियो के अपमानित होने पर उसकी ईश-प्रार्थना प्रकट करती है

हे प्रभो!

हमे विश्वास दो अपना बना लो

सदा स्वच्छन्द हो-चाहे जहाॅ हो

निरीह अबलाओ के लिए प्राण उत्सर्ग करना वह अपना धर्म समझता है। कायर हूणो को फटकार बता तुरन्त तलवार से उनके बन्धन काट देता है।

छल, कपट, विश्वासघात, कृतघ्नता और हिंसा को मातृगुप्त मनुष्यता के प्रतिकूल समझता और इसी कारण भटार्क को वह बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता है। स्वयं प्राण-पण से राष्ट्र-भक्त है। प्रपंचबुद्धि द्वारा देवसेना की बलि का रोकनेवाला मातृगुप्त ही था।

स्कन्दगुप्त के सम्राट घोषित होने पर मातृगुप्त को काश्मीर प्रदेश में न्यायाधिकरण का उच्च-पद मिलता है। वह अपने कर्त्तव्य-पालन में बड़ा निपुण है। गुप्त-साम्राज्य के विधान के अनुसार वह प्रजा की जान व माल की रक्षा का पूर्ण ध्यान रखता है। चोरी का पता लगाना रक्षक-वर्ग का कर्त्तव्य है। यदि पता न लग सके तो उतना धन उनके वेतन से कटता है। वेतन के कम होने पर घाटा राज-कोष से पूरा किया जाता है।

मातृगुप्त की पूर्व प्रणयिनी मालिनी श्रीनगर की सब से अधिक समृद्धशालिनी वेश्या बन जाती है। माल चोरी जाता है, और पता न लग सकने पर न्यायाधिकरण, मातृगुप्त के आदेश से राज-कोष से क्षति पूरी की जाती है। इसी अन्तर में मालिनी से साक्षात्कार हो जाता है, मालिनी क्षमा-प्रार्थी होती है, किन्तु निराश हो उसे लौटना पड़ता है।

भटार्क के विश्वासघात से कुभा नदी के युद्ध में स्कन्द की पराजय होती है। पंचनद प्रदेश पर हूणों का अधिकार जमता है और काश्मीर पर आक्रमण करने की तैयारी की जाती है। कुभा की बाढ़ में स्कन्द के बह जाने का समाचार पाकर, निराश हो मातृगुप्त पुनः काश्मीर छोड़ता है और विरक्त वृत्ति धारण कर विचरण करता है, और देश के नवयुवकों को उद्बोधित करने के लिए, मुचकुन्द की मोह-निद्रा से जगाने के लिए, भारत के

कोने-कोने में पर्य्यटन करने का सत्य-संकल्प करता है। अतीत के गौरव की स्मृति दिला भविष्य की समृद्धि के लिए सन्नद्ध करता है:

चरित थे पूत, भुजा मे शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा मे रहती थी टेव
वही है रक्त, वही है देश वही साहस है, वैसा ज्ञान
वही है शान्ति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य्य-संतान
जिये तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष
निछावर कर दे हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।

भारत के कवियो के लिए मातृगुप्त एक सुन्दर आदर्श उपस्थित करता है।

**कुमारदास (धातुसेन)** सिंहल का राजकुमार। स्वभाव का बड़ा हँसोड़। वृद्ध महाराज कुमारगुप्त से वार्तालाप हो रहा है। धातुसेन को पता है कि महाराज छोटी रानी अनन्तदेवी के वशीभूत हो उसके इशारे पर नाचते हैं। संयोग से सुग्रीव का प्रसंग छिड़ जाता है। अवसर पा कैसी मीठी चुटकी लेता है:

"सुना है सम्राट! स्त्री की मंत्रणा बड़ी अनुकूल और उपयोगी होती है। इसीलिए उन्हे राज्य के झंझटों से शीघ्र छुट्टी मिल गई। परम भट्टारक की दुहाई! एक स्त्री को मंत्री आप भी बना लें; बड़े-बड़े दाढ़ी मूछवाले मंत्रियो के बदले उसकी एकान्त मन्त्रणा कल्याणकारिणी होगी।"

दूसरे अवसर पर इन्ही महाराज के प्रति (हाथ जोड़कर)
"यदि दक्षिणापथ पर आक्रमण का आयोजन हो तो मुझे आज्ञा मिले, मेरा घर पास है, मैं जाकर स्वच्छन्दतापूर्वक लेट रहूंगा, सेना को भी कष्ट न होने पावेगा।"

किन्तु एक राजकुमार के लिए इस प्रकार मुँह-फट बनना अनुपयुक्त है, विशेषकर एक महान सम्राट के समक्ष। अनन्त देवी का उस पर क्रुद्ध होना अनुचित नहीं। महाराज को यही समझाते बना "वह अबोध विदेशी हँसोड़ है।"

फिर भी कुमार कुमारदास एक सहृदय प्रेमी युवक है। स्वदेश जाते हुए वह मातृगुप्त के प्रति कैसे गहरे स्नेह का परिचय देता है:

"मित्र! इन थोड़े दिनों का परिचय मुझे आजीवन स्मरण रहेगा। अब तो मैं सिंहल जाता हूँ देश की पुकार है। इसलिए मैं स्वप्नों का देश 'भव्य भारत' छोड़ता हूँ। कविवर! इस क्षीण-परिचय कुमार धातुसेन को भूलना मत कभी आना।"

सिंहल का यह राजकुमार निगाह का बड़ा पैना है। अल्प-कालीन निवासी द्वारा ही उसकी सूक्ष्म-दृष्टि ने विशाल गुप्त-साम्राज्य के भावी परिवर्तन को भाँप लिया। वह इस परिवर्तन का स्वागत भी करता है। मातृगुप्त के अचम्भित होने पर उसके विचार उत्कृष्ट दार्शनिकता के द्योतक हैं:

"सरल युवक! इस गति-शील जगत् मे परिवर्तन पर आश्चर्य! परिवर्तन रुका कि महापरिवर्तन प्रलय हुआ। परिवर्तन ही सृष्टि है, जीवन है। स्थिर होना मृत्यु है, निश्चेष्ठ शान्ति मरण है। प्रकृति क्रियाशील है। समय पुरुष और स्त्री की गेंद लेकर दोनों हाथ से खेलता है। पुल्लिंग और स्त्रीलिंग की समष्टि अभिव्यक्ति की कुँजी है। पुरुष उछाल दिया जाता है, उत्पेक्षण होता है। स्त्री आकर्षण करती है। यही जड़-प्रकृति का चेतन रहस्य है।"

महाराज कुमारगुप्त अपनी छोटी रानी अनन्तदेवी की कठपुतली बने हुए हैं; विलासमय जीवन विताते हैं, राज-काज से कितने विमुख हैं, साम्राज्य के अन्दर भयंकर क्रान्ति उपस्थित है, काले मेघ क्षितिज में एकत्र हैं, शीघ्र ही घोर अंधकार होने वाला है आदि आदि प्रश्न उसके दूरदर्शी मस्तिष्क में रह रहकर चक्कर लगाते हैं। केवल मात्र एक ही आशा का केन्द्र ध्रुवतारा दृष्टिगत होता है। और वह है युवराज स्कन्द। इसीलिए पृथक होते समय अपने मित्र मातृगुप्त को सचेत और सावधान रहने का आदेश करता है।

किन्तु इस क्रान्ति-मय अभिनय को निज नेत्रों द्वारा देखने की अभिलाषा इतनी बलवती हो उठती है कि वह सिंहल जाते जाते रुक जाता है। महादेवी देवकी के वध के लिए गुप्त षड्यंत्र रचा जा रहा है—इस बात की सूचना उसे मिलती है, और वह उसके विफल बनाने का तन-मन से प्रयत्न करने लगता है। ठीक शस्त्र-प्रहार के समय किवाड़ तोड़ स्कन्द, मुद्गल और धातुसेन का प्रवेश हो जाता है और महादेवी बाल-बाल बच जाती है।

वृद्ध भारत के प्रति सिंहल-राजकुमार की अटूट श्रद्धा है और उसके कल्याण के लिए उसका सर्वस्व अर्पित है। उसकी निगाह में भारत समग्र विश्व का है और सम्पूर्ण वसुन्धरा इसके प्रेम-पाश में आबद्ध है। वह उसे अनादि काल से ज्ञान और मानवता की ज्योति का पुञ्ज समझता है। विश्व का सब से ऊँचा शृङ्ग जिसका शिरोधान (तकिया), सब से गम्भीर तथा विशाल समुद्र जिसका पद-रज-प्रक्षालक हो, और जिसके अन्दर प्रकृति देवी ने एक से एक सुन्दर दृश्य ढूंढ़ ढूंढ़ कर एकत्रित कर रक्खे हों, ऐसे अनुपम देश भारतवर्ष को वह भगवती वसुन्धरा का हृदय समझता है।

धातुसेन शान्ति-प्रिय भी एक ही है। विहार के समीप चतुष्पथ के चैत्य (मन्दिर) में कुछ ब्राह्मण बलि किया चाहते हैं। भिक्षुवर्ग और बौद्ध जनता के उत्तेजित हो उठने की आशंका है। सम्भव है हिन्दू-मुस्लिम-दंगों की भाँति ब्राह्मण और बौद्धों में जंग छिड़ जाय। आचार्य प्रख्यातकीर्ति को साथ ले धातुसेन घटनास्थल पर पहुँचता है और नाना युक्तियों द्वारा उत्तेजित लोगों को शान्त करने का प्रयत्न करता है। उपनिषदों के नेति-नेति वाद और गौतम के अनात्म--वाद का साम्य प्रदर्शित कर वृथा रक्त-पात करने की मूर्खता से बचाता है।

धर्म के नाम पर जो संसार में ढोंग प्रचलित है उससे इस राजकुमार को बड़ी घृणा है। विदेशी नृशंस हूणों द्वारा पादाक्रान्त देश कट्टरपन्थियों के परस्पर शिर फोड़ने पर उसे बड़ा शोक होता है। धर्म वृक्ष के चारों ओर स्वर्ण के कांटेदार जाल फैले देख उस का हृदय खण्ड खण्ड होता है। अपने धर्म की रक्षा के लिए जिसे राज-शक्ति और पाशविक बल-प्रयोग की आवश्यकता पड़े ऐसे धर्म को वह बहुत निर्बल धर्म समझता है। उसकी दृष्टि में ब्राह्मणों की महानता इस में है कि वे त्याग और क्षमा की मूर्त्ति हों, ऋत और अमृत-वृत्ति से जीवन-निर्वाह करते हों और रखते हों विश्व-कल्याण की कामना।

धातुसेन को गुप्त-साम्राज्य का पोषक और स्कन्दगुप्त का आदि से अन्त तक अनन्य भक्त पाते हैं। संसार में ऐसे शुद्ध हृदय, धार्मिक और शान्ति-प्रिय समाज-सेवकों की अत्यन्त आवश्यकता है।

**प्रख्यातकीर्ति**—लङ्का राजकुल का श्रमण, महाबोधि-विहार-स्थविर अर्थात् बौद्ध भिक्षु-संघ का आचार्य। मातृगुप्त का शैशव-

सहचर (बचपन का साथी)। अहिंसा धर्म का सच्चा उपासक। कट्टर पंथियों का विरोधी। बौद्ध-धर्म को आर्य्य-धर्म की एक शाखा माननेवाला। पौराणिक और बौद्धों के बीच ऐक्यता स्थापित करने का परम उत्सुक। पशु-बलि रोकने के लिए ब्राह्मणों से लड़ मरने के स्थान मे स्वयं अपने प्राण समर्पण करने के लिए सर्वदा उद्यत और इस प्रकार अन्धविश्वासी कट्टर ब्राह्मणों के कठोर हृदय को पिघला लेनेवाला। अन्य बौद्ध भिक्षुओं के प्रतिकूल वर्वर हूणों का अत्यन्त विरोधी और स्कन्दगुप्त का सच्चा शुभचिन्तक।

पृथ्वीसेन—मन्त्री कुमारामात्य। गुप्त-साम्राज्य का परम हितैषी और स्कन्दगुप्त का राज-भक्त सहचर। निर्भय और स्पष्टवक्ता। महाराज कुमारगुप्त के निधन हो जाने पर स्कन्दगुप्त के स्थान मे छोटी रानी अनन्तदेवी के गर्भ से उत्पन्न पुरगुप्त को राज-सिंहासन पर बिठाने का षड़यन्त्र रचा जा रहा है। पृथ्वीसेन से शस्त्र अर्पण करके पुरगुप्त को महाराजाधिराज स्वीकार करने के लिए आग्रह किया जा रहा है। किन्तु कुमारामात्य निर्भयता-पूर्वक स्पष्ट शब्दों मे उत्तर देता है:

"कुमार! तुम्हारे दुर्वल और अत्याचारी हाथों मे गुप्त-साम्राज्य का दंड टिकेगा नहीं। सम्भवतः तुम साम्राज्य पर विपत्ति का आवाहन करोगे। इसलिए कुमार! इससे विरक्त हो जाओ।"

पृथ्वीसेन वीर होते हुए भी अन्तर्विद्रोह में भाग ले साम्राज्य के ऊपर विपत्ति के काले बादल ला उपस्थित करना उचित नहीं समझता। वह नहीं चाहता कि विदेशी वर्वर हूण इस अन्तर्विरोध से लाभ उठा, देश पर आक्रमण करे। किन्तु उसे यह भी पसन्द

नहो कि स्कन्दगुप्त के होते हुए अनधिकारी पुरगुप्त को जीते जी सम्राट स्वीकार कर ले। अतः नवीन महावलाधिकृत भटार्क को जिसने लोभ-वश पुरगुप्त का पक्ष ग्रहण किया हुआ है, सचेत करता हुआ स्वयं आत्म वलिदान कर देता है:

"भटार्क! जिसे तुम खेल समझ कर हाथ मे ले रहे हो, उस काल-भुजङ्गी राष्ट्र-नीति की प्राण देकर भी रक्षा करना। एक नहीं, सौ स्कन्दगुप्त उस पर न्यौछावर हैं। आर्य्य-साम्राज्य की जय हो।"

खिंगिल—हूण आक्रमणकारी। स्वभाव का बड़ा क्रूर और नृशंस। भेद-नीति-प्रयोग में अत्यन्त कुशल। जिस ग्राम नगर या देश पर धावा वोलता उस पर विपत्ति के पहाड़ ढा देता। निरीह और असहाय लोगो को वृक्षो से वाँध कोड़े लगवाता और गुप्त धन न वताने पर तप्त लोहे से जलवाता और कपड़ो को तेल मे तर करा आग लगवा देता। वर्वर इतना कि स्त्री और बच्चो तक पर अत्याचार करने से न झिझकता।

मगध की छोटी रानी अनन्तदेवी को आभूषण-प्रिय जान, वहु-मूल्य रत्नो को पिटारी भेट कर, वश मे किया। भटार्क को धनराशि दे अपनी ओर खींचा। बौद्ध-सघ को उत्कोच (रिश्वत) दे 'स्कन्द के विरुद्ध भड़काया। साम, दाम, दंड, भेद सब के सब प्रयोग में लाये गये। किन्तु 'यतोधर्मस्ततोजय' के अनुसार अन्त मे पराजय हुई। वन्दी हुआ और स्कन्द द्वारा क्षमा प्रदान किये जाने पर, सिन्धुनद के इस पार के पवित्र देश पर कभी पग न धरने का वचन दे घर को लौटा।

मुद्गल—विदूषक। भोजन-भट्ट। उदर-रूपी अक्षय-मंजूषा का स्वामी। पाकशाला पर आक्रमण कर उसका सर्वस्वान्त कर

डालने में बड़ा निपुण। काव्य-कर्ता मातृगुप्त का अन्तरङ्ग मित्र और उसे राजधानी में बुला स्कन्द का सहचर बनवाने में प्रधान साधन। दूत कार्य में बड़ा कुशल अतः 'स्कन्द' का बड़ा सहायक। मसखरा भी पल्ले सिरे का। सिंहल का राजकुमार धातुसेन मुद्गल के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। दोनो का पहले कभी साक्षात्कार नहीं हुआ। केवल एक दूसरे का नाम सुन रक्खा है। इतने ही में मुद्गल का प्रवेश हो जाता है।

मुद्गल क्यो भइया, तुम्हीं धातुसेन हो ?

धातुसेन (हँसकर) पँहचानते नही ?

मुद्गल किसी को 'धातु' पहचानना बड़ा असाधारण कार्य है तुम किस धातु के हो ?

मुक्ति के विषय मे आपके विचार सुनिये

"ब्राह्मण की मुक्ति भोजन करते करते मरने में, बनियो की दिवालो की चोट से गिर जाने मे और शूद्रों को मुक्ति द्विजवर्ग की ठोकरों से।"

विवाह हो जाने पर अत्यन्त असन्तुष्ट। घर वाली से बेज़ार। यदि हो सकता हो तो फेर देने को भी प्रस्तुत।

कुसमय आ पड़ने पर गम्भीर भी प्रथम कोटि का। कुभा तीर 'स्कन्द' की पराजय पर भाग्य चक्र की आलोचना कितनी मर्मस्पर्शी !

' राजा से रंक और ऊपर से नीचे, कभी दुर्वृत्त दानव, कभी स्नेह-संवलित मानव; कहीं वीणा की झनकार, कहीं दीनता का तिरस्कार।

मगध में महादेवी और परम भट्टारक बनने के अभिनय पर कितनी तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि !

"सम्राट की उपाधि है प्रकाशादित्य', परन्तु प्रकाश के स्थान पर अँधेरा है। आदित्य मे गर्मी नहीं। सिंहासन के सिंह सोने के हैं। समस्त भारत हूणों के चरणों में लोट रहा है और भटार्क मूर्ख की बुद्धि के समान अपने कर्मों पर पश्चात्ताप कर रहा है।"

आप पंडित है, और ज्योतिष मे काफी दखल है, किन्तु देश के छबीले छोकड़े छोकड़ियों से आप बड़े अप्रसन्न है। किस लिए ? इसलिए कि जहाँ देखो वहीं उनसे प्रश्न होते है 'मुझसे क्यों रूठे हुए है ? किसी दूसरे पर उनका स्नेह है क्या ?' 'वह सुन्दरी कब मिलेगी ?' 'मिलेगी भी या नहीं?' 'मुहूर्त भी यदि पूछे जाते हैं तो जुआ खेलने के लिए, प्रेम के लिए और अभिसार के लिए।

नोट अभिसार—प्रेमी या प्रेमिका से गुप्त सम्मिलन के लिए गमन।

# नाटक के स्त्री-पात्र

देवकी महाराज कुमारगुप्त की बड़ी रानी और स्कन्द की माँ। साध्वी। पति-परायणा। करुणार्द्र-हृदया। पुत्र-वत्सला। परमेश्वर की अनन्त दया पर अविचल श्रद्धा रखने वाली। वीर प्रसवा आर्य्य-ललना।

देवकी सच्ची देवकी है। बड़ी निर्भय है। मृत्यु सामने मुँह फाड़े खड़ी है। शर्वनाग की पत्नी रामा अपने पिशाचपति को महादेवी की हत्या से प्राण-पण से निवारण कर रही है। दुष्ट शर्व, धन एवं पद-लोलुप शर्व, एक नहीं सुनता। मार्ग के रोड़े-रूप स्वयं रामा के बध के लिए उतारू हो रहा है। निर्भीक देवकी तार स्वर से ललकार उठती है :

"शान्त हो रामा! देवकी अपने रक्त के बदले और किसी का रक्त नहीं गिराना चाहती। चल रे रक्त के प्यासे कुत्ते चल अपना काम कर।"

परमेश्वर पर देवकी का अटल विश्वास है। देवकी का घात कराने से पूर्व भटार्क उसे भगवान का स्मरण करने की याद दिलाता है। देवकी का उत्तर कितना मर्म-स्पर्शी है।

"मेरे अन्तर की करुण कामना एक थी कि 'स्क॰॰' को देख लूँ। परन्तु तुम लोगों से, हत्यारों से, मैं उसके लिए भी प्रार्थना न करूँगी। प्रार्थना उसी विश्वम्भर के श्री-चरणों में है जो अपनी अनन्त दया का अभेद्य कवच पहनाकर मेरे स्कन्द को सदैव सुरक्षित रक्खेगा।"

अपने हृत्खण्ड स्कन्द को वह विजयी एवं विनयशील देखने की आन्तरिक कामना रखती है। चिरकाल के उपरान्त अचानक मिलने और स्कन्द द्वारा चरण-वन्दन किये जाने पर स्वयं उसका आशीर्वाद और गोविन्दगुप्त से स्कन्द को आशीर्वाद की प्रार्थना ध्यान देने योग्य है

"वत्स ! चिर विजयी हो। देवता तुम्हारे रक्षक हों। महाराज-पुत्र ! इसे आशीर्वाद दीजिये कि गुप्त-कुल के गुरुजनो के प्रति यह सदैव विनयशील रहे।"

कृतज्ञता उसके हृदय में फूट फूट कर भरी हुई है। भटार्क द्वारा उकसाये जाने पर शर्वनाग देवकी के बध को उद्यत होता है। उसकी धर्म-पत्नी प्राण-पण से उसे इस जघन्य-कर्म से निवारण करती है। शर्व पहले उसी का काम तमाम करने को खड्ग निकालता है। दैवयोग से मुद्गल और धातुसेन सहित स्कन्द का प्रवेश होता है, और शर्व आदि सब के सब वन्दी हो जाते हैं। करुणार्द्र-हृदया देवकी रामा को विधवा दशा में देखना सहन नहीं कर सकती। तुरन्त स्कन्द को आदेश करती है

'वत्स ! इसे किसी विषय का शासक बना कर भेजो, जिससे दुखिया रामा को किसी प्रकार का कष्ट न हो।" सब महादेवी की जय-ध्वनि करते है।

'शर्व' (देवकी के पैरो पर गिरकर) "माँ ! मुझे क्षमा करो। मैं मनुष्य से पशु हो गया था।" आदि

देवी देवकी की क्षमाशीलता देखते बनती है

"उठो ! क्षमा पर मनुष्य का अधिकार है। वह पशु के पास नहीं मिलती। प्रतिहिंसा पाशव धर्म है। उठो मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ।"

स्कन्द के प्रति देवकी का आदेश

"वत्स! आज तुम्हारे शुभ महाभिषेक में एक बूँद भी रक्त न गिरे। तुम्हारी माता की यह मंगल कामना है कि तुम्हारा शासन-दंड क्षमा के संकेत पर चला करे। आज मैं सब के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

पुत्र वत्सलता में देवकी महाराज दशरथ से किसी अंश में कम नहीं। कुभा की तरल तरङ्गों से स्कन्द के बहक जाने का समाचार पाकर उसका विलाप किस पाषाण-हृदय को द्रवीभूत न करेगा?

"भटार्क! कहाँ है मेरा सर्वस्व? बता दे—मेरे आनन्द का उत्सव, मेरी आशा का सहारा कहाँ है?

बता भटार्क! वह आर्य्यावर्त्त का रत्न कहाँ है? देश का बिना दाम का सेवक, वह जन साधारण के हृदय का स्वामी कहाँ है? आदि आदि प्रकार से बिलखाती हुई देवकी ने "निज तन तृण इव परिहरेऊ"। माता देवकी! तुम ऐसी थीं, तभी स्कन्द ऐसा था।

**अनन्तदेवी** महाराज कुमारगुप्त की छोटी रानी और पुरगुप्त की माँ। गुप्त-काल की कैकई। वृद्ध महाराज की नकेल घुमाने में बड़ी दक्ष। प्रपंच रचना में अत्यन्त कुशल। कुटिल-नीति-विशारद। साहस और महत्वाकांक्षा की सजीव मूर्त्ति। दासी जया के कटाक्ष-पूर्ण वाक्य पर 'स्वामिनी! आप बड़ा भयानक खेल खेल रही हैं' अनन्तदेवी का उत्तर कितना वीरोचित है

"क्षुद्र हृदय जो चूहे के शब्द से भी शंकित होते हैं, जो अपनी सांस से भी चौंक उठते है, उनके लिए उन्नति का कंटकित मार्ग नहीं है। महत्वाकांक्षा का दुर्गम स्वर्ग उनके लिए स्वप्न है।"

वह भाग्य के भरोसे भले दिनों की प्रतीक्षा नहीं करती। अपने बल, अपनी बुद्धि और अपने साहस पर उसे अचूक विश्वास है। जया को फटकारती हुई वह कहती है

"अपना नियति का पथ मै अपने पैरों चलूँगी, अपनी शिक्षा रहने दे।" अपने भाग्य की वह स्वयं विधाता बनना चाहती है।

हूणों पर स्कन्द की विजय पर विजय के समाचार पाकर पुरगुप्त को प्रसन्नता प्रकट करते देख अनंतदेवी के हृदय में आग लग जाती है और किस बुरी तरह से फटकार बताती है—

"परन्तु तुमको क्या ? निर्वीर्य्य, निरीह बालक ! तुम्हें भी इसकी प्रसन्नता है ? लज्जा के गर्त्त मे डूब ही जाते। और भी छाती फुलाकर इसका आनन्द मनाते हो !"

प्रलोभनों द्वारा राज-कर्मचारियों को अपनी ओर फोड़ लेने में अपना समकक्ष नहीं रखती। भटार्क, प्रपंचबुद्धि, शर्वनाग आदि उसी के इशारों पर नाचते हैं। महाराज की विलास-प्रियता उसे बड़ी अखरती है। उसके दुष्परिणाम के लिए वह स्व-पक्षियों को पहले ही से सजग करती है

"राजधानी में आनन्द-विलास हो रहा है, और पारसीक मदिरा की धारा बह रही है। इनके स्थान पर रक्त की धारा बहेगी। आज तुम कालागरु के गंध-धूम से सन्तुष्ट हो रहे हो। कल इन उच्च सौध मन्दिरों मे महापिशाची की विप्लव-ज्वाला धधकेगी। उस चिरायँध की उत्कट गंध असह्य होगी। तब

तुम भटार्क! उस आगामी खंड प्रलय के लिए प्रस्तुत हो कि नहीं।" सबको प्रति-श्रुत (वद्ध-प्रतिज्ञ) बना लेती है।

महारानी देवकी के प्रति उसे सौतेला डाह है। पुरगुप्त के उत्तराधिकार पाने मे वह उसे बड़ा रोड़ा समझती है। अतः सब से पहले वह इसी का खातमा करा देना चाहती है।

नराधम भटार्क और शर्वनाग इस दुष्कृत्य के लिए उद्यत होते है। किन्तु ठीक समय पर सौभाग्य से स्कन्द का शुभागमन हो जाता है और देवी देवकी का दैवात् त्राण हो जाता है। अनन्तदेवी यह कहकर 'फिर भी मैं तुम्हारे पिता की पत्नी हूं' जीवन-दान पा लेती है।

अनन्तदेवी के विचित्र चरित्र का संक्षिप्त चित्रण कुशल लेखक ने उसी के श्री-मुख से कराया है। विजया को फटकारती हुई वह कहती है "तू जानती है कि किसके साथ बात कररही है? मैं वही हूं जो अश्वमेध। पराक्रम कुमारगुप्त से, बालों को सुगंधित करने के लिए गन्ध-चूर्ण जलवाती थी। जिसकी एक तीखी कोर से गुप्त-साम्राज्य डावाडोल हो रहा है।........मै वह आग लगाऊंगी जो प्रलय के समुद्र से भी न बुझे।"

विजया मालव के धन कुवेर की कन्या। स्वभाव की भीरु। मानसिक स्थिरता में देवसेना के प्रतिकूल। स्वार्थ-साधन के लिए कर्तव्याकर्तव्य का लेशमात्र ध्यान न रखने वाली। जीवन यात्रा में उभय-भ्रष्ट। न इधर की न उधर की।

हूणों की सम्मिलित वाहिनी उमड़ी चली आ रही है। उज्जयिनी का दुर्गम दुर्ग-द्वार टूट चुका है। आक्रमणकारियों का

भयानक कोलाहल अन्तःपुर तक सुनाई दे रहा है। भीम शत्रु सेना से लोहा लेने जाता हुआ अन्तःपुर को सावधान रहने के लिए आदेश दे रहा है। मालवेश्वरी जयमाला और वीरबाला देवसेना अपनी अपनी छुरियाँ निकाल आत्म रक्षा के लिए प्रस्तुत हो रही हैं। और सेठ कन्या विजया का प्रस्ताव होता है "महारानी! किसी सुरक्षित स्थान में निकल चलिये।" एक छुरी उसे भी निकालकर दी जाती है किन्तु 'वणिक-पुत्र जाने कहा गढ़ लैवे की बात' वाली कहावत चरितार्थ होती है

"न न न, मैं लेकर क्या करूँगी। भयानक!" यही शब्द तो निकले। विचारी को छिपाते ही बना।

संकल्प की स्थिरता बहुत कम है। अचानक स्कन्द की वीर, कान्तिमान, और भव्य मूर्त्ति पर दृष्टि पड़ती है और झट मन मोहित हो गया। किन्तु ज्योंही राजकुमार के मुख पर उदासीनता के चिह्न दिखाई दिये, राज्याधिकार लेने की ओर से विमुखता दीख पड़ी, फौरन वृत्ति बदल गई।

विजया के यह कहने पर कि दुर्बलता इन्हें राज्य से हटा रही है, देवसेना ने खूब ताड़ा। और लगी कहने 'क्यों विजया! वैभव का अभाव तुम्हे खटकने तो नहीं लगा?' आगे चलकर उसने ठीक ही कहा

"धनवानों के हाथ मे माप ही एक है। वह विद्या, सौन्दर्य्य, बल, पवित्रता, और तो क्या, हृदय भी उसी से मापते है। वह माप है उनका ऐश्वर्य्य।"

कभी चक्रपालित की ओर मन झुकता है और उसे भी वीर-हृदय प्रशस्त-वक्ष और उदार मुख-मंडल वाला समझती है। ऐश्वर्य्य-लिप्सा की उसके द्वारा तृप्ति होने की आशा है।

अभी भटार्क पर दृष्टि पड़ती है और उसके नवीन महाबलाधिकृत होने के कारण भावी ऐश्वर्य्य प्राप्ति की आशा उस नीच प्रकृति के अन्दर भी वीरत्व और मनोहर सौन्दर्य्य का आरोप करा देती है।

स्कन्द के राज्याभिषेक हो जाने पर फिर उधर को झुकती है और देवसेना को मार्ग का कंटक समझ उसकी बलि चढ़वाने का प्रयत्न करती है। किन्तु विफलता वहाँ भी मत्थे मढ़ती है। स्कन्द को भी नाना प्रलोभन देती है।

विजया अपने दो छिपे हुए रत्न-गृहों का उत्कोचन देती है जिनके द्वारा सेना एकत्र करके हूणों को परास्त किया जा सकता था। किन्तु इस निर्लज्ज प्रलोभन में आ स्कन्द साम्राज्य खरीदने की इच्छा नहीं रखता। नहीं, नहीं, साम्राज्य तो यहीं की वस्तु है, अब वह उसके संसर्ग द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति तक की कामना नहीं करता।

विजया पुनः विश्वास दिलाती है कि अब उसने भटार्क का संसर्ग छोड़ दिया है और अपने को स्कन्द की सेवा के उपयुक्त बनाने का उद्योग कर रही है। देश-सेवा करने का भी दम भरती है। एक और केवल एक ही वस्तु चाहती है कि स्कन्द उसे स्वीकार कर ले।

धन-धान्य और सांसारिक ऐश्वर्य्य के प्रलोभनों द्वारा काम चलता न देख, अब वह अपने भरे हुए यौवन एवं प्रेमी हृदय-विलास के समस्त उपकरणों को स्कन्द के श्री-चरणों में सादर समर्पित करती है। स्वर्ग की अप्सराओं को कल्पित और अपने आपको प्रत्यक्ष अप्सरा रूप में प्रकट करती है, नाना-रूप भरती है। अगरु- धूम सी अलकें, मादकता भरी नेत्रों की लाली,

विद्युच्छटा सी सौन्दर्य्य-सुषमा, प्रेमाश्रु भरी वरुनी, वनितोचित दुर्बल दैन्य, सभी युवक फंसाने के फन्दे स्कन्द के सन्मुख उपस्थित किये जाते हैं। किन्तु स्कन्द के दृढ़ निश्चय की अविचल चट्टान टस से मस नहीं होती। पैरों तक को पकड़कर बैठ जाती है। हद हो गई। फिर भी स्कन्द उसे पिशाची समझ पैर छुड़ाकर अलग भाग जाता है।

इसी बीच भटार्क का प्रवेश होता है। वह भी इसके दुश्चरित्रों से भली भाँति परिचित है। यहाँ भी दुतकारी जाती है। विजया घोर अपमान-वश शिर नीचा कर लेती है और छिन्नाभ्रवत् स्वयमेव विनष्ट हो जाती है।

ओहो! कैसी विचित्र स्त्री! हृदय में अखंड वेग; तीव्र तृष्णा से परिपूर्ण, कृतघ्नता और क्रूरताओं का भंडार अपने सुख, अपनी तृप्ति के लिए जघन्य से जघन्य कृत्य करने को प्रस्तुत। स्कन्द ने ठीक ही उसे पिशाची की उपाधि से विभूषित किया था।

**देवसेना** मालवेश बन्धुवर्मा की भगिनी। नाटक की प्रधान स्त्री-पात्र और अस्पष्ट-रूपेण नायिका। विजया के हृदय-स्फोट की कंटिका। आदर्श क्षत्रिय-वीराङ्गना। सयम और तपस्या की प्रति-मूर्त्ति। परोपकार-निरत। निस्स्वार्थ प्रेम की परम पुजारिन। निर्मल, निश्छल निष्कपट हृदय वाली। राष्ट्र-हित के लिए जीने और राष्ट्र-हित के लिए मरने को सर्वदा उद्यत। दृढ़-प्रतिज्ञ और सर्वोपरि आस्तिक।

जल थल, मारुत, व्योम मे, जो छाया है सब ओर
खोज-खोज कर खो गई, मैं पागल-प्रेम विभोर

यह है मस्ताना गान उस समय का जब बर्बर विदेशी हूणों से लोहा लेने बन्धुवर्मा आतुर हो रहा है, अन्तःपुर की रक्षा के

लाले पड़ रहे हैं, भयानकता स्वयं भयंकर रूप धारण किये सामने से भागी चली आ रही है; सेठ-कन्या विजया के प्राण पखेरू मारे भय के उड़ना चाहते हैं।

संकट आ पड़ने पर, धर्म, सतीत्व और मान-मर्य्यादा की रक्षा के हित वह छुरी को कलेजे में रख लेने की सुन्दर वस्तु समझती है। वह जानती ही नहीं कि शंका, लज्जा, भय तथा खेद क्या वस्तु विशेष हैं।

प्रकृति के स्वर में स्वर मिलाना उसकी सर्वोत्तम प्रिय वस्तु है। अखिल विश्व उसे एक संगीतशाला के रूप में दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक कम्प में एक ताल सुनाई देती है। प्रत्येक परमाणु के सम्मिलन में समता और प्रत्येक हरी पत्ती के हिलने में लय की ध्वनि निकलती है। प्रकृति के विकृत रूप में विश्व-वीणा की तान वेसुरी पड़ जाती है। साध्वी देवसेना, पक्षियों की चहचहाहट, निर्झरों के कलकल निनाद और शीतल-मन्द-सुगन्ध-समीर की सनसनाहट में स्वर्गीय संगीत लहरी का आस्वादन करती है। उसके मादक नेत्र सर्वत्र प्रकृति-नटी के मद-भरे नृत्य अवलोकन करते हैं।

कविवर विहारी के शब्दों में देवसेना संसारी जीवन को एक प्रकार का 'दीरघ दाघ-निदाघ' ही समझती है जिसमें यदि कहीं शान्ति मिल सकती है तो केवल प्रेम-तरु-तले जहाँ टुक विश्राम कराकर 'मन की कथा व्यथा भरी वैठो सुनते जाव' की प्रार्थना करती है, साथ ही चेतावनी भी वड़ी हितभरी देती है-

पी लो छवि-रस माधुरी, साँचो जीवन-वेल
जी लो सुख से आयुभर, यह माया का खेल

वन्धुवर्मा आर्य्य-राष्ट्र की भावी हित-कामना की दृष्टि से मालव-राज्य को स्कन्द को समर्पित करने का प्रस्ताव उपस्थित

करता है; मालवेश्वरी जयमाला पतिदेव को अपने पैतृक राज्य को सहसा ठुकरा देने की सम्मति नहीं देती। देवसेना का सहसा प्रवेश होता है। कैसी सुन्दर सिखवन देती है

"क्षुद्र-स्वार्थ, भाभी, जाने दो। भइया को देखो कैसा उदार, कैसा महान, और कितना पवित्र!"

देवी जयमाला पर, अन्ततोगत्वा, राष्ट्र-हित की विजय होती है। स्कन्द सम्राट-पद पर अभिषिक्त होते हैं। इस शुभ-कार्य मे विघ्न-बाधा उपस्थित करने की नीच बुद्धि से भटार्क उज्जयिनी की ओर प्रस्थान करता है। विजया भी भटार्क का अनुसरण करती है। प्रपंच रचने की आयोजना विफल होती है। अन्त को भंडा फूटता है और सब के सब बन्दी हो जाते हैं। पूछे जाने पर विजया स्वीकार कर लेती है कि उसने भटार्क को वरण किया है। विशाल-हृदया देवसेना 'सम्राट! विजया मेरी सखी है' ऐसा कहकर उसका परित्राण करती है।

किन्तु उपकृत होने पर भी क्षुद्र-बुद्धि अपनी क्षुद्रता का परित्याग नहीं करता। देवसेना वहुतेरा विश्वास दिलाती है कि वह 'मूल्य देकर प्रणय नहीं लेना चाहती' फिर भी विजया उसे मार्ग का रोड़ा ही समझती है और उसे एक दम मिटाकर ही दम लेना चाहती है। वह 'भ्रष्टाचार-संघ के प्रधान श्रमण अन-आर्य्य' प्रपंचवुद्धि की शरण जाती है और देवसेना की वलि चढ़वाने का षड़्यंत्र रचवाती है। किन्तु कवि ने सत्य ही कहा है

'जाको राखे साइयाँ मारि न सकि है कोय'।

देवसेना निर्भयता-पूर्वक विजया के साथ श्मशान-भूमि में जाती है। धूर्त प्रपंचवुद्धि देव-सेवा के मिस से उसकी वलि चढ़ाना चाहता है। देवसेना मृत्यु का स्वागत करती है। अन्त समय मे

उसकी एक और केवल एक ही कामना शेष है कि वह विजया के इस भारी भ्रम को न भगा सकी कि देवसेना विजया के स्थान को कदापि ग्रहण करना नहीं चाहती। यद्यपि वह अपने स्वच्छ पवित्र मन-मन्दिर में स्कन्द को संवरण कर चुकी है किन्तु विजया की खातिर आजीवन अविवाहित ब्रह्मचारिणी बने रहकर राष्ट्र-सेवा का पावन प्रण ठाना है।

"प्रियतम! मेरे देवता युवराज!! तुम्हारी जय हो!" कहकर खड्ग प्रहार के लिए शिर झुकाती है। दैवात् पीछे से मातृगुप्त का आगमन होता है। प्रपंच पकड़ा जाता है और देवसेना स्कन्द का दर्शन-लाभ करती है।

हँसोड़ सखियाँ स्कन्द और देवसेना की प्रणय-चर्चा करती हैं। राजकुमारी खीजती है। उसे यह सुनना पसन्द नहीं कि मालव देकर देवसेना सम्राज्ञी बनायी जा रही है। इसमें वह अपना एवं महाराज का घोर अपमान समझती है। नीरव जीवन और एकान्त व्याकुलता को हृदय-रुदन से धो डालने का प्रयत्न करती है। वीणा के स्वर में अपने करुण-क्रन्दन की स्वर लहरी की तान मिला गुप्त-वेदना का यत्किञ्चित् विस्मरण कर लेती है। उसी के शब्दों में उसकी करुण कहानी सुनिये

"मेरा हृदय मुझसे अनुरोध करता है, मचलता है, रूठता है; मैं उसे मनाती हूँ। आँखें प्रणय-कलह उत्पन्न कराती हैं; चित्त उत्तेजित करता है ; बुद्धि झिड़कती है; कान कुछ सुनते ही नहीं। मैं सब को समझाती हूँ, विवाद मिटाती हूँ। सखी! फिर भी इसी झगड़ालू कुटुम्ब में गृहस्थी सम्हालकर, स्वस्थ्य होकर बैठती हूँ।" कैसा विकट 'आध्यात्मिक कुटुम्ब' और कैसी दक्षा, कुशला और गम्भीराशया गेहिनी!"

तपस्विनी देवसेना प्रणय-पीर को अन्तिम प्रणाम कर उत्कट संयम का जीवन विताती है। भिक्षुणी के रूप में महादेवी देवकी की समाधि के समीप पर्ण-कुटी वना काल-यापन करती है। आधुनिक साधु-संन्यासियों की भाँति आलस्य और अकर्मण्यता का जीवन उसे नहीं भाता। नित्य-प्रति समाधि को स्वच्छ करती है और वृद्ध-वावा पर्णदत्त के साथ रूखी-सूखी मधूकरी माँग माँग कर देश के अनाथ वालक-वालिकाओं और घायल सैनिकों की सेवा-शुश्रूषा में अनवरत संलग्न रहती है।

इस पर्ण-कुटीर में उसका हृदय प्रशान्त महोदधि का समकक्ष वन गया है। यहां उसे वह अमूल्य रत्न मिला है जो पहले कभी प्राप्त न हो सका था। ऐसे अलौकिक आनन्द का आस्वादन भी उसे कभी नहीं हुआ।

हृदय ! तू है वना जल-निधि, लहरियाँ खेलती तुझमें
मिला अव कौनसा नव रत्न, जो पहले न था तुझमें

था अवश्य ! किन्तु उसका अनुभव इस शान्ति कुटीर के संयमी और तपोमय जीवन में ही हुआ।

इसी तपो-भूमि में स्कन्द के पुनः दर्शन होते हैं। वृद्ध पर्ण-दत्त और देवसेना की अनुपम तपस्या-वृत्ति को देखकर स्कन्द का हृदय हिल जाता है। औदास्य के वादल उसके हृदयाकाश को आ घेरते हैं। कैसी हारी हारी वातें करता है

"साम्राज्य तो नहीं है, मैं वचा हूँ वह अपना ममत्व तुम्हे अर्पित करके उऋण होऊँगा और एकान्त वास करूँगा।" इस पर देवसेना का उत्तर कितना विनम्र, कितना गम्भीर और कैसा देश-प्रेम स्वात्माभिमान पूर्ण।

"सो न होगा सम्राट ! मैं दासी हूँ । मालव ने जो देश के लिए उत्सर्ग किया है उसका प्रतिदान लेकर मैं उस महत्व को कलंकित न करूंगी। मैं आजीवन दासी बनी रहूंगी; परन्तु आपके प्राप्य में भाग न लूंगी।"

धन्य हो अनासक्त योगिनी देवसेना, तुम धन्य हो ! तुम जैसी आत्मोत्सर्ग-परायणा वीर भारत-ललनाएँ ही जननी-जन्म-भूमि का उद्धार कर सकेंगी न कि सूखे टुकड़ों पर लड़नेवाले विलास-प्रिय, पद-लोलुप, दम्भी और रंगे सियार।

स्कन्द पुन. पुनः प्रार्थना करता हुआ कानन के कोने का स्वप्न देखता है। किन्तु 'सेवाधर्मो परमगहनः योगिनामप्य गम्यः' के मर्म से चिर परिचित देवसेना भारत के चक्रवर्ती सम्राट को अकर्मण्य बनकर जीवित रहना नहीं चाहती। यद्यपि वह सदैव के लिए अपने को स्कन्द की भेंट कर चुकी है और अभिमानी भक्त के समान निष्काम भाव से अपने आराध्य देव की उपासना मे आजीवन संलग्न रहेगी, तथापि अब वह कामना के भंवर मे फंसना नहीं चाहती है।

" नाथ ! मै आपकी हूँ, मैंने अपने को दे दिया है। अब उसके बदले कुछ लिया नहीं चाहती।" ऐसा कहते कहते वह अश्रु-पूर्णाक्षी स्कन्द के चरणों पर सहसा गिर पड़ती है। स्कन्द के हृदय पर जादू का सा प्रभाव पड़ता है और वह भी मातृदेवी की समाधि को साक्षी बना कुमार-जीवन बिताकर देश को स्वाधीन बनाने की भीषण प्रतिज्ञा करता है।

जयमाला मालवेश्वर बन्धुवर्मा की धर्मपत्नी। वीरक्षत्राणी स्वधर्म, स्वदेश और स्वात्माभिमान की रक्षार्थ प्राण निछावर करने के लिए सर्वदा उद्यत। साहस की सजीव मूर्ति।

शक और हूणों की सम्मिलित सेनाएँ मालव पर आक्रमण करने वाली है। सहायता के लिए युवराज स्कन्दगुप्त से प्रार्थना की जा चुकी है। किन्तु अभी तक युवराज से कोई सन्देश नही मिल पाया। बन्धुवर्मा को दुर्ग की रक्षा कर सकने में सन्देह हो रहा है। ऐसे अवसर पर सच्ची वीराङ्गना जयमाला के साहस भरे शब्द हतोत्साह पतिदेव के हृदय मे सचमुच सिंह-विक्रम का संचार कर देते है

"नाथ ! तब क्या मुझे स्कन्दगुप्त का अभिनय करना होगा? क्या मालवेश को दूसरे की सहायता पर ही राज्य करने का साहस हुआ था? जाओ प्रभो! सेना लेकर सिंह-विक्रम से शत्रु दलों पर टूट पड़ो! दुर्ग रक्षा का भार मै लेती हूँ।"

युद्ध को जयमाला मनोविनोद की सामिग्री समझती है। 'रुद्र के शृङ्गीनाद, भैरवी के तांडव नृत्य और शस्त्रो की झंकार से उसे भैरवी संगीत की झाँकी होती है।" जीवन के अन्तिम दृश्य मे उसे जीवन-रहस्य के चरम सौन्दर्य्य का अनुभव होता है। भयंकर युद्धों को वह "ध्वंसमयी महामाया का निरन्तर संगीत समझती है।" इसी लिए सेठ-कन्या विजया ऐसी क्षत्रिय वीराङ्गनाओं को 'आग की चिनगारियां' समझती है। अपने देवर भीमवर्मा को भी वही वीरोचित आदेश देती है

"हम लोगो की चिन्ता न करो, वीर! स्त्रियो की, ब्राह्मणों की, पीड़ितो और अनाथो की रक्षा मे प्राण-विसर्जन करना क्षत्रिय का धर्म है। एक प्रलय की ज्वाला अपनी तलवार से फैला दो। भैरव के शृंगीनाद के समान प्रबल हुंकार से शत्रु-हृदय कँपा दो। वीर! बढ़ो, गिरो तो मध्याह्न के भीषण सूर्य्य के समान! आगे पीछे, सर्वत्र आलोक और उज्जवलता रहे।"

जयमाला में एक और केवल एक ही दुर्बलता है। वह समष्टि-हित में व्यष्टि-हित देखने की क्षमता नहीं रखती। समस्त आर्य्य-राष्ट्र के स्वतन्त्र हो जाने में मालव-राज्य भी हूणों के निरन्तर आक्रमणों से सुरक्षित हो जायगा यह दूर की बात उसकी समझ में नहीं आ रही। मालव के मगध साम्राज्य का केन्द्र स्थान बन जाने से हूणों से टक्कर लेना आसान होगा; वीर स्कन्दगुप्त ही आर्य्य-राष्ट्र का सम्राट बनने की क्षमता रखता है, उसी ने मालव प्रदेश की रक्षा की है; अतः वही उसका वास्तविक स्वामी है। इसी प्रकार की बातें बन्धुवर्मा पत्नी को समझा रहा है। परन्तु जयमाला अपनी दलीलें देती ही जाती है

"परन्तु इसकी आवश्यकता ही क्या है? उनका इतना बड़ा साम्राज्य है, तब भी क्या मालव ही के बिना उनका काम न चलेगा?" 'क्या वे माँगते हैं?" "क्या तुम्हारा मालव उन्हे (स्कन्द को) प्रिय है?" आदि आदि प्रश्नों का उचित समाधान करने का प्रयत्न करता है। वह विश्वास दिलाता है कि युवराज ऐसे क्षुद्र-हृदय नहीं, वह तो सिंहासन ग्रहण करने से भी विमुख हैं। वह समझाता है कि मगध के अन्तर्विरोध से विदेशी आक्रमणकारी लाभ उठाना चाहते हैं। देश-व्यापी युद्ध की प्रतिक्षण आशंका की जा रही है। आर्य्य-राष्ट्र का त्राण इसी में है कि युवराज का केन्द्र स्थान उज्जयिनी ही हो। जयमाला फिर भी सहमत नहीं होती। वह पैतृक राज्य को इस प्रकार दूसरे को समर्पण कर स्वयं दास-वृत्ति से जीवन बिताने को हेय समझती है।

देवसेना भी अपने भ्राता का पक्ष लेती हुई सर्वात्मा के स्वर में आत्म-विस्मृति करके क्षुद्र स्वार्थत्याग का उपदेश करती है।

किन्तु जयमाला सर्वभूत हित कामना को परम धर्म मानती हुई भी आत्म-हित से विमुख रहने को अन्याय ही समझती है।

बन्धुवर्मा ने यह भी झिड़की दी कि यदि उसे यह पता होता कि उसकी सह धर्मिणी वैभव और ऐश्वर्य्य के लिए कृतघ्नता का समर्थन करेगी, तो वह इस वैवाहिक जीवन को दूर ही से नमस्कार कर देता। किन्तु देवसेना पर अधिक प्रभाव न पड़ा।

अन्त मे देवर भीम के मर्म-स्पर्शी शब्द हृदय मे घर करते हैं

"देखो, हमारा आर्य्यावर्त विपन्न है, यदि हम मर-मिटकर भी इसकी कुछ सेवा कर सके।"

बात समझ मे आती है और वह लज्जित हो पतिदेव से क्षमा-प्रार्थी होती है।

'मेरी आँखे खुल गईं। आज हमने जो राज्य पाया है, वह विश्व-साम्राज्य से भी ऊँचा है महान है। मेरे स्वामी और ऐसे महान्! धन्य हूँ मै।"

कहाँ तो इतनी हठ थी, और कहा अब स्वयं महाराज स्कन्दगुप्त से आग्रह करती है

"देव! यह सिहासन आपका है, मालवेश का इस पर कोई अधिकार नही। आर्य्यावर्त के सम्राट के अतिरिक्त अब दूसरा कोई मालव के सिहासन पर नहीं बैठ सकता।" विचित्र परिवर्तन!

जयमाला की जीवन-लीला समाप्त होने जा रही है। हूणो के साथ स्कन्द का घोर संग्राम छिड़ता है, अन्त मे विजय भी उसी की होती है, किन्तु मालवेश बन्धुवर्मा देश और धर्म की

रक्षार्थ लड़ते लड़ते गरुड़ध्वज की शान्तिदायिनी छाया में प्राण समर्पण करता है और साध्वी सती जयमाला पतिदेव की सहगामिनी होती है।

**कमला** भटार्क की जननी। भारत के दुर्दिन और दुर्दशा पर आठ आठ आँसू बहाने वाली। वीर प्रसवा, धर्म-परायणा और कृतज्ञ-हृदया भारत-ललना।

अपने वीर पुत्र भटार्क को साम्राज्य-विरोधी कुचक्रियों के फन्दे में फँसा देख कमला के हृदय के खंड खंड हो जाते हैं। भटार्क के अपने पुत्र होने में भी उसे सन्देह होता है। ऐसे नीच को जन्म देकर वह अपने को कलंकित हुई समझती है।

भटार्क माता के सन्मुख अपनी वीरता के राग अलापता है। अपनी खड्ग-लता से आग के फूल बरसाने की शेखी बघारता है; अपने वज्र-ध्वनि के समान रण-नाद से शत्रुओं के कलेजे कँपाने की डींग हाँकता है भारत के क्षत्रियों से अपना लोहा मनवाने का गर्व करता है। कमला इन सबको स्वीकार करती हुई भी उसके प्रति और भी अधिक घृणा और ग्लानि प्रकट करती है।

"तू देश द्रोही है! तू राज-कुल की शान्ति का प्रलय-मेघ बन गया है। और तू साम्राज्य के कुचक्रियों में से एक है। ओह! नीच! कृतघ्न!! कमला कलङ्किनी हो सकती है; परन्तु यह नीचता उसके रक्त में नहीं", ऐसा कह एक दम रो देती है। वह नहीं चाहती कि उसकी कोख का जाया पुत्र उच्च से उच्च पद-प्राप्ति के लिए भी, चाहे वह महाबलाधिकृत ही क्यों न बना दिया गया हो, देश-द्रोह करके अपने हाथ-पैर पाप-शृंखला में जकड़वा ले। वह ऐसे पापी का नमक खाकर अपने को भी पाप-

भागिनी नहीं बनानी चाहती। इसीलिए उसका ऐश्वर्य्य त्याग भिक्षा-वृत्ति से निर्वाह करने के लिए उज्जयिनी में चली आयी है।

उज्जयिनी में युवराज स्कन्द का अभिषेक होने का समाचार सुन, इस शुभ-कार्य में विघ्न डालने का षड़यंत्र रचने, भटार्क उज्जयिनी आता है किन्तु भण्डाफोड हो जाने पर वन्दी होता है। करुणार्द्र-हृदया महादेवी देवकी उसे क्षमा प्रदान कराती है। अस्थिरमति और कृतघ्न भटार्क पुनः प्रपंचबुद्धि आदि कुचक्रियों के फन्दे में फँस हूण राज खिंगिल को आक्रमण के लिए निमंत्रित करता है, और ऐन मौके पर कुभा का पुल तोड़ स्कन्द की सेना को उसकी भेटकर हूणों की विजय-दुन्दभी वजवाता है।

यह शोक समाचार पा और अपने जीवनाधार स्कन्द को भी कुभा की भेट हुआ समझ, देवी देवकी नाना विलाप करती हुई जीवन-लीला समाप्त करती है।

ऐसे अवसर पर भटार्क का प्रवेश होता है। कमला भी यहीं उपस्थित है। निज जननी को देख भटार्क सहसा कह उठता है कौन ? मेरी मां।

कमला "तू कह सकता है। परन्तु मुझे तुझको पुत्र कहने में सङ्कोच होता है लज्जा से गढ़ी जा रही हूं। जिस जननी की सन्तान जिसका अभागा पुत्र—ऐसा देश-द्रोही हो, उसको क्या मुँह दिखाना चाहिये ? आह भटार्क !"

महादेवी के मृत शरीर को सम्हालती हुई कमला की क्रोध ज्वाला पुनः फूट निकलती है—

"देख पिशाच ! एक वार अपनी विजय पर प्रसन्नता से खिल खिलाले। नीच ! पुण्य-प्रतिमा को स्त्रियों की गरिमा को भूल

में लोटता हुआ देखकर, एक बार हृदय खोलकर हँस ले। हा देवी !"

भटार्क भयभीत होकर देखता है। कमला से फिर नहीं रहा जाता

"महादेवी, इस यंत्रणा और प्रतारणा से भरे हुए संसार की पिशाच भूमि को छोड़कर, अक्षय लोक को गई, और तू जीता रहा—सुखी घरों में आग लगाने, हाहाकार मचाने और देश को अनाथ बनाकर उसकी दुर्दशा करने के लिए नरक के कीड़े तू जीता रहा !!"

पुनः भटार्क को कुछ समझाती हुई सी आत्म-हत्या के लिए प्रस्तुत होती है

"अरे मूर्ख ! अपनी तुच्छ बुद्धि को ठीक मानकर, उसके दर्प में भूलकर, मनुष्य कितना बड़ा अपराध कर सकता है ! पामर ! तू सम्राटों का नियामक बन गया ? मैंने भूल की; सूतिका-गृह में ही तेरा गला घोटकर क्यों न मार डाला ! आत्म-हत्या के अतिरिक्त अब और कोई प्रायश्चित नहीं।"

भटार्क मारे लज्जा के भूमि में गढ़ जाता है और शस्त्र त्याग। इस संघर्ष से पृथक रहने और अपनी दुर्बुद्धि से जननी को पुनः कभी कष्ट न देने की प्रतिज्ञा करता है।

महादेवी की अन्त्येष्टि-क्रिया राज-सम्मान के साथ की जाती है और कमला और भटार्क पर तीव्र दैवी आलोक का प्रकाश होता है।

कमला ! तुम धन्य हो ! तुम जैसी देश-भक्त जननियों की आज विपन्न भारत को बड़ी आवश्यकता है।

एक अन्तिम दृश्य, और कमला के चरित्र-चित्रण की समाप्ति। आर्य्य-साम्राज्य की दैन्य दशा से पगली हुई सी रामा की दृष्टि अकस्मात् निष्प्रभ, निस्तेज, मलिन-चित्त और हतोत्साह स्कन्द पर पड़जाती है, और सहसा पूछने लगती है

"तुम कौन ? क्या महाराज स्कन्द ? वही जिसने अपनी प्रचंड हुंकार से दस्युओं को कँपा दिया, ठोकर मारकर सोई हुई अकर्मण्य जनता को जगाया, जिसके नाम से रोएँ खड़े हो जाते थे, भुजाएँ फड़कने लगती थीं ? वही स्कन्द —रमणियों का रक्षक बालकों का विश्वास, वृद्धों का आश्रय और आर्य्यावर्त की छत्र छाया ? नहीं, भ्रम हुआ।"

स्कन्द (बैठ कर) आह ! मैं वही स्कन्द हूँ अकेला, निस्सहाय !

कमला (कुटी से बाहर निकलती हुई) "कौन कहता है तुम अकेले हो ? समग्र संसार तुम्हारे साथ है। स्वानुभूति को जागृत करो। यदि भविष्यत् से डरते हो कि तुम्हारा पतन ही समीप है, तो तुम उस अनिवार्य स्रोत से लड़ जाओ। तुम्हारे प्रचंड और विश्वासपूर्ण पदाघात से विंध्य के समान कोई शैल उठ खड़ा होगा, जो उस विघ्न-स्रोत को लौटा देगा······। उठो स्कन्द ! आसुरी वृत्तियों का नाश करो, सोने वालों को जगाओ, और रोने वालों को हँसाओ। आर्य्यावर्त्त तुम्हारे साथ होगा; और उस आर्य्य-पताका के नीचे समग्र विश्व होगा। वीर !"

किन्तु आज कमला जननी कहाँ ? जो हमारे निष्प्रभ, निरुद्यम और निरुत्साह युवक-स्कन्दों की स्वानुभूति को जागृत करे, भविष्यत् के भय को उनसे दूर भगावे, जिससे वे आसुरी वृत्तियों का नाश कर स्वयं जगे और अन्य साथियों को भी सचेत कर दे।

रामा अन्तर्वेद के विषयपति शर्वनाग की धर्म-पत्नी। कुमार्गी पति को सुमार्ग पर लाने में अद्वितीय कृतज्ञता की मूर्त्ति। देश-भक्ति में देवसेना और कमला की समकक्ष। वीर हृदया, निर्भय और निश्शंक।

कादम्ब के नशे में शर्व सोने के संसार का स्वप्न देख रहा है जिसकी उसे महादेवी देवकी की हत्या के उपरान्त प्राप्ति होगी। रामा तत्क्षण उत्तर देती है

"पामर ! सोने की लंका राख हो गई।"

शर्व उसे पहचानकर कुछ होश में आता है। और उसे रानी बनाने और सोने से लादने आदि का सब्ज बाग दिखा अपने को निकम्मा और निखट्टू बताये जाने की लज्जा को दूर करने का प्रयत्न करता है।

'शर्व' के नशे में बड़बड़ाने से जब 'रामा' को पता चलता है कि उसका पति लोभ-वश मनुष्य से पशु बनने जा रहा है, कृतघ्न और रक्त का पिपासु महादेवी देवकी का बध करने पर उतारू हो गया है, तो मारे क्रोध के वह आग बबूला होजाती है

"कृतघ्नता की कीच के कीड़े ! नारकी क्रूर-कर्मा ! मैं तेरी इच्छा कदापि पूर्ण न होने दूँगी। मेरे रक्त के प्रत्येक परमाणु में जिसकी कृपा की शक्ति है, जिसके स्नेह का आकर्षण है, उसके प्रतिकूल आचरण ! वह मेरा पति तो क्या, स्वयं ईश्वर भी हो, नहीं करने पावेगा।"

पापी को पाप-कर्म से रोकने के लिये उसे हम काली-कराली का भयंकर अभिनय करने के लिये भी उद्यत पाते हैं। शर्व उसे भय दिखाता है। रामा ललकारकर कहती है

"हाँ-हाँ, मैं न होने दूँगी। मुझे ही मार डाल हत्यारे! मद्यप! तेरी रक्त-पिपासा शान्त हो जाय। परन्तु महादेवी पर हाथ लगाया तो मैं पिशाचिनी-सी प्रलय की काली आंधी बनकर कुचक्रियों के जीवन की काली राख अपने शरीर मे लपेट कर तांडव नृत्य करूँगी। मान जा, इसी में तेरा भला है।"

'शर्व' सोने और सम्मान-लिप्सा मे अन्धा हो अपने निश्चय से डिगना नहीं चाहता। 'रामा' क्रोध-प्रदर्शन को असफल हुआ देख ललनोचित प्रेम का आश्रय लेती है और भावपूर्ण शब्दों द्वारा पतिदेव को समझाने का उद्योग करती है

"मैं दूँगी। सोना मैं नहीं चाहती, मान मैं नहीं चाहती, मुझे अपना स्वामी उसी मनुष्य रूप में चाहिये। विह्वल हो, पैर पकड़ लेती है। स्वामिन्! हिंस्र-पशु भी जिनसे पाले जाते है उन पर चोट नहीं करते; और तुम तो मस्तिष्क रखनेवाले मनुष्य हो।

स्वार्थान्ध पति पर अपने रोष और प्रीति-पूर्वक समझाने का जब कोई प्रभाव पड़ता न जान पड़ा, तो रामा के कृतज्ञ हृदय के लिये एक ही मार्ग खुला था। वह बड़ी शीघ्रता के साथ महारानी देवकी की सेवा में उपस्थित हुई और समस्त वृत्तान्त कह सुनाया।

देवकी, प्रपंचबुद्धि और शर्वनाग का प्रवेश होता है। देवकी को मृत्यु के लिये प्रस्तुत होने को कहा जा रहा है। 'प्रपंचबुद्धि' 'शर्व' को आगे बढ़ने का आदेश देता है। रामा का निर्भीक निनाद आज भी पापी हृदय मे धड़कन उत्पन्न करेगा।

"एक 'शर्व' नहीं तुम्हारे जैसे सैकड़ों पिशाच भी यदि जुटकर आवे, तो आज महादेवी का अङ्ग-स्पर्श कोई न कर सकेगा।"

कृतज्ञता को रामा सबसे पवित्र धर्म समझती है। इसी से वह अपने कृतघ्न पति को भरपेट कोसती है

"अरे मूर्ख! अरे अभागे!! तू टुकड़े के लोभ में सती का अपमान करे, यह तेरी स्पर्धा!!! तू कीड़ों से भी तुच्छ है। पहले मैं मरूँगी और तब महादेवी।"

ज्योंही राक्षस 'शर्व' रामा का अन्त करने के लिये खड्ग उठाता है, दैवात् किवाड़ तोड़ स्कन्द और मुद्गल आदि का प्रवेश होता है। 'शर्व' के हाथ से खड्ग छीन उसकी गर्दन दबा दी जाती है। उचित तो यही था कि आततायी का उसी क्षण अन्त कर दिया जाता; किन्तु सती रामा साध्वी रामा, कृतज्ञ-हृदया रामा, यहां भी शर्व के आड़े में काम आई और विशाल-हृदय स्कन्द को यही कहते बना

"परन्तु मैं तुम्हे मुक्त करता हूँ, क्षमा करता हूँ। तुम्हारे अपराध ही तुम्हारे मर्म स्थल पर सैकड़ों बिच्छुओं के डंक की चोट करेंगे। मै रामा साध्वी रामा को अपनी आज्ञा से विधवा न बनाऊँगा। रामा सती! तेरे पुण्य से आज तेरा पति मृत्यु से बचा।"

नाटक मे 'रामा' के अन्तिम दर्शनों का दृश्य क्या है, मानो विह्वला, सर्वस्व-विहीना जननी भारत-वसुन्धरा का मर्म भेदी करुण-क्रन्दन है

"मैं ( रामा ) विश्व को आराम प्रदान करने वाली हूँ। हाँ, जिसकी सन्तान को 'हूणों' ने पीस डाला! ( ठहर कर ) मेरी! मेरी सन्तान! इन अभागों की सो वे नहीं थीं। वे तो तलवार की बारीक धार पर पैर फैलाकर सोना जानती थीं। धधकती हुई ज्वाला में हँसते हुए कूद पड़ती थीं······। देखा था एक दिन! वही तो 'तू' है जिसने अपनी प्रचंड हुँकार से दस्युओं को कँपा दिया था, ठोकर मारकर सोई हुई अकर्मण्य जनता को

जगा दिया था""। वही रमणियों का रक्षक, बालकों का विश्वास, वृद्धों का आश्रय और आर्य्यावर्त की छत्रछाया।"

माँ! तेरी करुण कहानी सुन सकने की क्षमता परम पिता जी हमे कब प्रदान करेंगे? हा, माँ!

मालिनी—काश्मीर प्रदेश की रूप-लावण्यमयी कुमारिका, और कविकुल-शिरोमणि मातृगुप्त की प्रणयिनी। कवि के काश्मीर-वियोग के पश्चात् श्रीनगर की सबसे अधिक समृद्धि शालिनी वेश्या। मातृगुप्त, स्कन्द द्वारा, काश्मीर प्रदेश के न्यायाधिकरण के उच्च पद पर नियुक्त होता है। इसी समय वेश्या की प्रचुर धनराशि चोरी जाती है। न्यायाधीश, गुप्त-साम्राज्य के विधान के अनुसार, दंडनायक (कोतवाल) को तलब करता है। दंडनायक चोरी का पता लगाने में असमर्थ होता है और मातृगुप्त की आज्ञा से चोरी की क्षति राज-कोष से पूरी की जाती है। यह रकम दंडनायक के वेतन से प्रति मास कटती है।

इसी बीच, मातृगुप्त को पूर्व-प्रेम का स्मरण होता है और अवगुंठन (घूँघट) उठते ही भ्रम दूर हो जाता है। किन्तु हृदयेश्वरी को वेश्या-रूप मे देख वह आश्चर्य्य में डूब जाता है। मालिनी अपने दुर्दैव पर खेद प्रकट करती है और मातृगुप्त उसे इस लिये तिरस्कृत दृष्टि से देखता है कि उसने सोने की खातिर नन्दन का अम्लान कुसुम बेच डाला। मालिनी क्षमा-प्रार्थी होती है। मातृगुप्त उसकी स्मृति बनाये रखने का वचन देता है, किन्तु स्वीकार करने मे असमर्थ है। मालिनी जाती है और होता है काश्मीर पर हूणों का आक्रमण। ऐसी दयनीय दशा मे वैराग्य के अतिरिक्त मातृगुप्त के लिये अन्य आश्रय ही क्या हो सकता था?

नोट नन्दन स्वर्गलोक मे देवताओं की वाटिका।

## Important Passages With Model Explanations in Simple Hindi

### (१) राष्ट्रनीति......समझने लगे हैं (P. 5; L 3-8)

मगध के वृद्ध सम्राट कुमारगुप्त विलासप्रियता मे निमग्न हैं। राज्य के आवश्यक कार्यों की देख-भाल के लिये उन्हें अवकाश नहीं। विदेशी हूणों के आक्रमणों का आतङ्क छाया हुआ है। सेनापति पर्णदत्त युवराज स्कन्दगुप्त का ध्यान इस ओर आकर्षित कर रहा है। स्कन्द को चिन्ता का कोई कारण दिखाई नहीं देता और पर्णदत्त सदृश महावीरों के होते हुए गुप्त साम्राज्य को सुरक्षित समझता है। 'पर्ण' का उत्तर स्पष्ट, कटु, किन्तु सत्य, युवराज के कान खड़े कर देता है.

"महाराजकुमार ! कोरे उच्च विचार और शेखचिल्लियों के सदृश स्वप्न देखने से राष्ट्रों की रक्षा नहीं होती। जो बात प्रत्यक्ष दिखाई देती है उसके लिये प्रमाण की क्या आवश्यकता ? माना कि गुप्त साम्राज्य उन्नति की चरम सीमा को पहुंच चुका है; किन्तु इसके साथ ही साथ शासकों के कर्तव्यों में भी वृद्धि हुई है। खेद का विषय है कि अधिकारीवर्ग शासन-भारको उठाने के लिये प्रस्तुत नहीं। वे समझने लगे है कि राज-लक्ष्मी उनकी दासी है और उनकी इच्छा के संकेत पर नाचने वाली वस्तु है। कर्तव्य-क्षेत्र में उतरे विना, शुष्क बातों से काम कदापि नहीं चल सकता।"

### (२) कविता करना......हुआ क्या (P. 16; L.1-11)

मातृगुप्त कवियों के काल्पनिक और दैन्य-जीवन पर स्वगत विचार प्रकट कर रहा है

"मैं समझता था कि जन्म जन्मान्तरों के पुण्य कर्मों से कविता की ओर अभिरुचि उत्पन्न होती है; इसीलिये कविता करने का अभ्यास करना प्रारम्भ किया था। फल यह निकला कि पैसे पैसे को तरसने लगा। भोजनों का अभाव, वस्त्रों का अभाव, जिधर देखो उधर ही अभाव दिखाई दिया। फिर भी सन्तोष धारण किया। मन को जैसे बना तैसे समझाया। किन्तु यह सब भारी भ्रम ही सिद्ध हुआ। धनिकों के मुख की ओर देखते रहने के सिवाय अन्य आश्रय दिखाई न दिया। एक ओर भव्य भावना और कलित कल्पनाओं की तरङ्ग, और दूसरी ओर घोर दारिद्र्य का विकट आक्रमण! बड़ी कठिन समस्या!! माना कि प्रखर पाण्डित्य द्वारा बौद्ध विद्वानों को परास्त कर मनमाना यश प्राप्त किया; किन्तु कोरी प्रशंसा, यश और कीर्ति से भूख की ज्वाला नहीं बुझती।"

(३) क्यों? वही तो ·····कविता हीन (P. 19; last 3 lines, P. 16; 1st. 2 lines)

मुद्गल और मातृगुप्त मे परस्पर वार्तालाप हो रहा है। कवि की दयनीय दशा पर मुद्गल को तरस आता है और उससे इस काम को छोड़ देने की अनुमति देता है। उत्तर में मातृगुप्त अपनी असमर्थता प्रकट करता हुआ कहता है

"भाई! तुम ठीक कहते हो। पर क्या करूँ? मैं अशक्त हूँ। कविता से सम्बन्ध-विच्छेद अत्यन्त कठिन है। वह मेरे जीवन का आहार बनगयी है। इस वर्ण-मय चित्र में मुझे स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता है। मानसिक अन्धकार का नाश होकर अलौकिक प्रकाश की झलक मिलती है। असद् भावों के स्थान में सद्भावना जागृत होती है। जड़ता दूर भागती है और चैतन्यता से नाता जुड़ता है। बाहरी संसार से स्वयं मुख मुड़जाता है,

और आत्मा को आत्मा मे आनन्द आने लगता है। ऐसी अलौकिक वस्तु से वियोग क्योंकर सम्भव हो सकता है ?"

(४) और मनुष्य······बच जाता है। P. 17; L.8-12.

मुद्‌गल और मातृगुप्त के परस्पर वार्तालाप में मातृगुप्त ने कविता की प्रशंसा करते हुए कहा कि यह अन्धकार का आलोक से, असत् का सत से, जड़ का चेतन से और वाह्य जगत् को अन्तर्जगत् से सम्बन्ध जोड़ती है। उत्तर में मुद्‌गल ने कहा 'अच्छा माना! पर हाथ का मुख से, पेट का अन्न से सम्बन्ध कैसे जुड़ेगा, यह भी सोचा ?' मातृगुप्त ने इसे पेटार्थी पशुओं का धर्म बताया। इस पर मुद्‌गल ने उत्तर दिया:

"मित्रवर ! मनुष्य भी इन अर्थों में पशुओं से कम नहीं। पेट की चिन्ता से वह भी मुक्त नहीं। इसकी खातिर वह तरह तरह के पाप कर्म करता है। हाँ ! इतनी बात अवश्य है कि वह चालाकी और मक्कारी से अपने पापों को छिपाना जानता है, चिकनी चुपड़ी बातें बना, और रहन सहन में टीप टाप दिखा अपने को सभ्य मान बैठने का गर्व करता है! अन्यथा कोई चार पैर का पशु, कोई दो पैर वाला; पशुता से दोनों खाली नहीं।"

(५) संसृति ······के उठजाना। ( P. 18. Last 8 lines; P. 19. 1st 6 lines. )

मातृगुप्त अपनी दैन्य दशा से तंग है। उसे अपनी प्रिय जन्म-भूमि काश्मीर को छोड़ अवन्ती जाने का परामर्श दिया गया है। वह अपने बाल-काल के सखा मुद्‌गल से अपने हृद्‌गत भावों को प्रकट कर मानसी वेदना को भुलाने का प्रयत्न कर रहा है। उसे अपनी प्रणयिनी मालिनी की मधुर स्मृति भी सता रही है; विशेषतया जबकि उसका प्रिय सखा उससे पृथक हो रहा है और उससे पुनः शीघ्र लौटने का आग्रह कर रहा है:

"प्रिय सखे! बाल्यकाल के उस निश्चिन्त और सुख-मय जीवन को कहीं भूल न जाना। हा! कैसे स्वर्ण दिवस थे!! कैसी बे-रोक-टोक की घड़ियाँ!!! उसे उद्दण्डता समझ उसकी अवहेलना न करना। कैसा मदमाता यौवन! और कैसा आह भरा प्रेमी-हृदय!! उस माधुर्य्य-मयी युवती (मालिनी) के प्रेम-पाश मे मैं वैसा ही बुरी तरह फँसगया था जैसा मकरंद का लोभी भ्रमर पुष्प-कलिका के अन्दर। मित्र! आज वही विस्मृत सौन्दर्य्य जागृत हो उठा है। वलवती इच्छा होती है कि उस मोहिनी मूरत के पुनः दर्शन लाभकरूँ, और उसके अधरामृत को पान कर तृप्त होऊँ। पर हा! यह सब स्वप्न की सी बाते हो गयीं, और अब हताश हो सिवाय अपने नखों से आप अपनी छाती छीलने के अन्य कोई साधन दिखाई नहीं देता। ओहो! कैसे वे सुदिन थे जब मुक्ताओं की माला से सुशोभित उस सुन्दरी नवयुवती के वक्षस्थल के नख-क्षत को देख अलौकिक आनन्द प्राप्त करता था और तुम मेरे इस प्रेम की हँसी उड़ाते थे! मुझे आशा है उस स्वर्गीय सुख का अनुभव कराने के लिये तुम पुनः स्वदेश लौटोगे।"

N. B–संसृति–जीवन। उच्छृङ्खलता–बचपन की उद्दण्डता, मनमानी करने का स्वभाव। निश्वास आह भरी प्रेमी हृदय की सांस। परिरम्भ मुकुल–मुरझाई हुई कली जिसमे भ्रमर बन्दी हो जाता है। श्यामा– षोडसवर्षीया नवयुवती। नखदान नख-क्षत, नख-चिह्न।

मिलन-क्षितिज-तट-मधु-जलनिधि (रूपक) पौराणिक हिन्दू ग्रन्थों मे सात समुद्रों का उल्लेख मिलता है। उनमें से एक मधु अर्थात् शहद से भरा समुद्र है। यहां तात्पर्य्य मातृगुप्त के मधुर-प्रेम-मय हृदय-समुद्र से है। क्षितिज उस गोल रेखा का

नाम है जहां पृथ्वी और आकाश मिलते हुए दिखाई देते हैं। कहने का तात्पर्य्य यह है कि हे मित्रवर! आप अपने पुनः मिलने से मेरे प्रेमी हृदय समुद्र में हिलोर उठाना, आनन्द देना।

(६) अमृत........टूट गया (P. 19, L 9 14 )

दरिद्रता, जननी जन्म-भूमि काश्मीर जैसे अनुपम सौन्दर्य्य-मय प्रदेश को त्याग अवन्ति जाने को विवश करेगी और मेरे जीवन के समस्त स्वर्ण-स्वप्न विलुप्त होजायगे, इसी चिन्ता में कवि मातृगुप्त मनही मन गुनगुना रहा है

"हाय! मेरे समस्त मनोरथ विफल होगये! मेरी दशा उस असहाय भ्रमर की सी है जो कभी कमलों के वन में विचरण करता था, जिधर देखो उधर पुष्प-पराग दिखाई देता था; मधुर मधुका आस्वादन करता था। प्रातः सूर्य नारायण की कोमल किरणें कमलों को चूमचूमकर प्रफुल्लित करती थी, और संध्या समय चन्द्रमा की शीतल छाया उनके ऊपर अपनी सफेद चद्दर डाल सुला देती थी। कैसी सुन्दर घड़ियाँ थीं। और कैसा मधु-मय जीवन!! ऐसे अमृत भरे सरोवर के छूटने पर जो दशा किसी अलि-शावक की हो, वही दयनीय दशा आज मुझ मातृगुप्त की काश्मीर छोड़ने पर हो रही है। हा! कहाँ मिलेगी अब मुझे मालिनी-रूप कलिका? और स्वप्न होजायगा मुझे उसके अधरामृत का पान! अरे, समस्त मनकी भावनाएँ स्वप्नवत झूठी ही सिद्ध हुईं।"

N.B. अमृत का सरोवर-(आलंकारिक भाषा) यहाँ कल्पनाओं का क्षेत्र मन जिसमें नितनये मनके लड्डू लुढ़कते, और नितनया ख़याली पुलाव पकता है।

अतीन्द्रिय जगत ऐसा संसार जिसके भोग, इन्द्रियों द्वारा नहीं भोगे जाते अर्थात् मानसिक जगत्।

साकार कल्पना मानसी विचारों का कार्य-रूप में परिणत होना।

(७) उस हिमालय······ छेड़ो मत मित्र (P 20; L 3-10)

कवि, मातृगुप्त, से छूटने वाला है काश्मीर जैसा अनुपम सौन्दर्य्यमय प्रदेश, और बिछुड़ रही है उससे मालिनी जैसी स्नेह की साकार मूर्त्ति प्रणयिनी। ऐसे शोकाकुल अवसर का काव्यमय वर्णन पढ़ते ही बनता है

"काश्मीर जैसा श्वेत हिमाच्छादित पर्वतीय प्रदेश, और उस पर प्रभातकाल की सुनहली सूर्य्य प्रभा, सारे का सारा दृश्य सुनहला जान पड़ता है। प्रकृति देवी ने पीले पुखराज के महल खड़े कर रक्खे हैं। उन्हीं महलों के किसी पीत शिखर पर खड़े हो मेरी मन-भावनी मालिनी कभी मेरी ओर झाँक लिया करती थी। ओह! कैसा ऊषा को भी लज्जित करने वाला रूप-लावण्य! हिम से भी बढ़कर चित्त का शीतल करने वाली मूर्त्ति! हा! जान पड़ता है सूर्य्य की किरणे उसके सौन्दर्य्य का देख न सकीं। इसीलिये मेरा वह समस्त हिम से बना महल गला डाला और साथ मे गल गयी मेरी लवनी से भी कोमल प्रणयिनी मालिनी। अच्छा! अब रहने दो! मेरे मौन-आँसू प्यारीके हृदय को शान्ति प्रदान करे।"

(८) यदि यह······ आहार मिले (P. 20; L 13-16)

कविवर मातृगुप्त और सिंहल के राजकुमार, कुमारदास, में परस्पर अपनी अपनी जन्म भूमि काश्मीर और सिंहल द्वीप के सौन्दर्य्य-सुषमा के विषय मे वार्तालाप हो रहा है। मातृगुप्त अपनी प्रणयिनी मालिनी की स्मृति मे मग्न है और चाहता है कि मौन नीड़ में निवास करे और कोई छेड़े नहीं। कुमारदास उसे विद्वान, सुकवि और ज्ञानवान् बता मोहजाल से पृथक रहने

की अनुमति देता है। उत्तर में मातृगुप्त इस इन्द्रजाल का स्वागत करता हुआ कहता है: —

"मित्रवर्य्य! यदि यह संसार तुम्हारे कथनानुसार माया-जाल ही मान लिया जाय, तो भी इतना मानना ही पड़ेगा कि विश्व-नियन्ता की यह इच्छा है कि संसारी पुरुष इस चक्रमे झूला-झूलें। अतः हमारा यह कर्तव्य होजाता है कि उसकी अनन्त इच्छा के अनुसार कार्य कर उसे प्रसन्न करें। अतः हम इस मोह-जाल का हृदय से स्वागत करते है। वह भले ही अनन्त काल तक हमे इस इन्द्रजाल मे फँसाता रहे। हमें यह स्वीकार है। वह तो इन अभिलाषाओं से पूर्ण भूके हृदय के लिये भोजन है, और है तृप्ति का साधन।"

(६) सरल युवक ·····रहस्य है (P 21, L. 14 21)

सिहल के राजकुमार, कुमारदास, और मातृगुप्त के परस्पर वार्तालाप में राजकुमार मगध-साम्राज्य के अवश्यम्भावी परिवर्तन का उल्लेख करता है। मातृगुप्त को सुनकर आश्चर्य्य होता है। इसपर कुमारदास परिवर्तन को संसार-चक्र का मूल कारण बतलाता हुआ कहता है

"मित्र! तुम अभी बच्चे हो; समझ के कच्चे हो; भोली प्रकृति के हो। तुम नहीं जानते कि यह संसार स्वभाव ही से परिवर्तन शील है। इसमे आश्चर्य्य की क्या आवश्यकता? परिवर्तन मे जीवन. और स्थिरता मे मृत्यु का वास है। निश्चल और चेष्टा रहित तो मृत-शव ही हो सकता है। प्रकृति मे जिधर देखो उधर कुछ न कुछ होता हुआ दिखाई देगा। वह कभी निठल्ली नहीं बैठती। स्त्री और पुरुष प्रकृति-देवी के हाथ की गेंदें हैं जिनसे अहर्निश वह नाना खेल खेलती है। यदि इन दोनों का सम्मिलन

न हो, तो यह संसार ही लुप्त हो जाय, सिवाय शून्य के कुछ भी दिखाई न दे। जड़ प्रकृति में चेतनता लाने का मूल कारण ही स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण(खिचाव) है। इसी का दूसरा नाम दाम्पत्य-प्रेम है।"

N. B समष्टि मेल, मिलाप;समागम। अभिव्यक्ति सृष्टि, उत्पत्ति; प्रकट-रूपसंसार। जड़ प्रकृति का चेतन रहस्य जड़पदार्थ से सजीव प्राणियों की उत्पत्ति का रहस्य।

(१०) पहेली।......प्रस्तुत है (P. 22, L. 1 13)

वृद्ध महाराज, कुमारगुप्त, अपनी छोटी रानी अनन्तदेवी के प्रेम-पाश मे ऐसी बुरी तरह से फँसे हैं कि उसके हाथ की कठ-पुतली बने हुए हैं। राज-काज बिल्कुल छोड़ रक्खा है। हूणों के आक्रमण का भय है। भयंकर स्थिति उपस्थित है। सिहल का राजकुमार धातुसेन मातृगुप्त को इस ओर सचेत रहने की सूचना दे रहा है:—
"स्त्री वास्तव मे एक गुप्तभेद है, अनोखी वस्तु है, आश्चर्य उत्पन्न करने वाली चीज़ है। पुरुष की समस्त अवश्यकताओं को पूरा करती है। सारी पीर हर लेती है। मनुष्य एक अज्ञानी बालक के सदृश है। जिस नयी वस्तु को देखता है उसी के विषय में प्रश्न करने लग जाता है। जो झूठ-सच स्त्री बतादेती है, बालवत उसी से सन्तुष्ट हो जाता है। जो कुछ कहदेती है उसी को ब्रह्म-वाक्य मान तदनुसार कार्य करने लगजाता है।

महाराज की भी ठीक यही दशा है। विषय भोगो मे इतने लिप्त हैं कि छोटी रानी के इशारे पर नाचने हैं। परिणाम यह हुआ है कि समस्त साम्राज्य के अन्दर अराजकता फैल गई है। विदेशी हूणो के आक्रमणो का प्रतिक्षण भय लगा रहता है। भयंकर स्थिति समुपस्थित है। न जाने किस दिन राजा स्वयं चल बसे और घोर

अन्धकार मॅच उठे। केवल एकही आशा दिखाई देती है। और वह है युवराज स्कन्दगुप्त। उसी ओर सब की दृष्टि लगी हुई है। न जाने क्या क्या नाटक के से स्वाँग रचे जाँय! मित्र मातृगुप्त! याद रक्खो तुम भी अछूते न बचोगे। तुम्हें भी कार्य-क्षेत्र मे उतरना ही पड़ेगा। सावधानी से कार्य करना। सिंहल का यह राजकुमार और उस का समस्त सैनिक बल तुम्हारी सहायता के लिये उद्यत रहेगा।"

(११) राजधानी में ···कि नहीं। (P. 25; L. 3 9)

महाराज कुमारगुप्त की छोटी रानी अनन्तदेवी और नवीन सेनापति भटार्क मे परस्पर परामर्श हो रहा है। अनन्तदेवी क्रांति के लक्षणों की ओर संकेत करती हुई कहती है

"भटार्क! तुम देखते नहीं, राजधानी में क्या हो रहा है? भोग-विलास और मदिरापान मे किसी को पता नहीं कि क्या होने वाला है। इस बेसुधी का परिणाम यही होगा कि राज-क्रान्ति होगी; विल्पव मचेगा; रुधिर की नदी बहेगी। एक प्रकार की प्रलय उपस्थित होगी। सहस्रों जानें नष्ट होंगी। बोलो! उस भयंकर स्थिति का सामना करने के लिये तैयार हो या नहीं।"

N. B.—कालागरु—अगरु एक प्रकार की सुगन्धित औषधि है जो प्रायः हवन सामग्री में डाली जाती है। यहाँ काल को अगरु माना है जिसके धुएँ से सब सन्तुष्ट है और भविष्य की चिन्ता नहीं करते।

सौध मन्दिर-ऊँचे-ऊँचे राजमहल।

महापिशाची ईश्वर की प्रलय कारिणी रुद्रशक्ति।

(१२) सूची भेद्य ····आलिंगन (P. 25, L. 12 16)

अनन्तदेवी भटार्क से प्रपंचबुद्धि की दूरदर्शिता की प्रशंसा करती हुई कहती है

'भटार्क ! क्या तुम विचित्र-बुद्धि 'प्रपंचबुद्धि' को अभी तक नहीं जानते ? वह भविष्य में होने वाली दैवी घटनाओं को बहुत पहले ही जान लेता है। उसकी जलती आंखें सब ओर का ध्यान रखती हैं। जब वह मुस्कराता हुआ देखा जाय, तो समझलो कि वह किसी के विनाश पर उतरा हुआ है। विपत्तियों और कठिनाइयों की आंधी भले ही आएँ; वह तनिक भी नहीं घबड़ाता। अपितु प्रसन्न होता है। आकाश से बिजलियां टूटे; वह कदापि भय-भीत न होगा; उल्टा उनका स्वागत करेगा। बड़ी बला का आदमी है।"

N B **सूची भेद्य अन्धकार** ऐसा घोर अँधेरा जिसमे सुई समा जाय और पता न चले कि किधर क्या हो रहा है।

**रहस्यमयी नियति** दैवेच्छा, जिसका आज तक किसी को ठीक पता नहीं चला कि कब क्या कर डाले; भाग्य चक्र, जिसके फिरने में क्षण-मात्र न लगे, और किसी को पहले पता तक न चल पावे। **नील आवरण** काला पर्दा। **अभिचार** सर्वतो मुखी दृष्टि।

(१३) युद्ध............होता है (P. 45; L. I. 9)

मालव प्रदेश पर हूणों का आक्रमण हो रहा है। शत्रु-दल ने दुर्ग घेर लिया है। बन्धुवर्मा सामने से मुठ-भेड़ के लिये जा रहे हैं। भयंकर समस्या उपस्थित है। फिर भी वीर क्षत्राणियाँ जयमाला और देवसेना निर्भय आमोद प्रमोद मे मग्न हैं। देवसेना को गाने का व्यसन है। जयमाला से वीणा लेने को कहरही हैं। श्रेष्ठ-कन्या विजया को आश्चर्य्य होता है कि युद्ध और गान ! उत्तर भी जयमाला का वीराङ्गनोचित ही है :

"श्रेष्ठ-कन्ये ! युद्ध कायरो और भीरु पुरुषोके लिये भय की वस्तु है, न कि वीरों के लिये। वीर योद्धाओं को तो तलवारों का

खेल खेलने मे उतना ही आनन्द आता है जितना कि भगवान् रुद्रदेव को अपने तांडव-नृत्य मे। रणभेरी और शृङ्गी-नाद दोनो ही आनन्द-दायिनी वस्तु हैं। जीवन का वास्तविक रहस्य ही इसमें है कि अपने अन्त समय का दृश्य शान्ति और ज्ञानपूर्वक देख सकने की शक्ति रहे। जो ऐसा कर सके वे ही सच्चे वीर है। जब अत्याचारों की हद हो जाती है, युद्धों का छिड़ना अनिवार्य्य हो जाता है। विश्व का नियमन करनेवाली शक्ति इन युद्धों के द्वारा संसार का कल्याण करती एवं सत्य, न्याय और धर्म की स्थापना करती है। हमे ऐसा बल आर साहस उत्पन्न करना आवश्यक है जिससे युद्धों से भाग उठने के स्थान मे उनका स्वागत किया जा सके। अतः युद्ध जैसी कल्याणकारी वस्तु से भयभीत होने का कोई कारण नहीं।"

N. B. ध्वंसमयी महामाया जगन्नियन्ता की वह रुद्र-शक्ति जिसके द्वारा प्रकृति मे विनाश उत्पन्न होता है।

(१४) भरा नैनों में......रूप(P 45; last 6 lines P. 46; 1st 4 lines)

वर्वर हूणों का आक्रमण उपस्थित है। मालवेश वन्धुवर्मा रण-कंकण बाँध दुर्ग से बाहर जा रहे है। धर्म-पत्नी जयमाला के हाथ में वीणा लगा हुआ है, और भगिनी देवसेना राग अलापती है:

"यह संसार मायावी परमेश्वर का मायामय रंग-महल है जिसकी भूल-भुलैयों के अन्दर वह स्वयं छिपा बैठा है। आकर्षक वह इतना है कि उसका प्रेम मुझे पागल बनाये हुए है। उसकी खोज मे मारी मारी फिरती हूँ। जल मे, थल मे, वायु मे और आकाश मे जिधर देखती हूँ झलक उसी की दिखाई पड़ती है, पर नेत्र उसे देखसकने मे असमर्थ हैं। इस अन्ध-कूप में

उसका कहीं पता नहीं चलता। जान पड़ता है इस संसार-कूप मे उस मायावो ने भांग घोंट कर भरदी है। जिसे देखो वहीं इसके नशे में चूर है न बुराई से भय, न भलाई का होश। मेरा यह हाल है कि उसके अनुपम रूप से इतनी छकगयी हूँ कि निरन्तर उसीका ध्यान है। हृदय की प्रत्येक धड़कन से उसी की ध्वनि निकलती है। मेरा वह जीवनाधार बनगया है। संसार के सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण मेरी दृष्टि मे "कहीं धूप कहीं छाया" के दैवी खेल-तमाशे के अतिरिक्त अधिक मूल्य नहीं रखते। अतः मैं अपने को धन्य समझती हूं।"

(१५) पवित्रता की माप… ··सकता है(P .48;L.8-17)

विजया और देवसेना मे परस्पर विश्रम्भालाप छिड़ रहा है। विजया संसार को छल-कपट, ईर्षा द्वेश, हिंसा और कृतघ्नता आदि की रंगभूमि पा विक्षुब्ध हो, उसे नरक-धाम समझती है। इसके प्रतिकूल देवसेना उसे स्वर्गीय नन्दन-वन बतलाती है। अपने मत की पुष्टि में उसका कथन है

"अरी बहन! संसार मे सभी प्रकार की वस्तुएँ-है-भली और बुरी। यदि बुरी वस्तुएँ न होतीं तो भलीओं का अनुमान ही न होता। मलिनता से ही पवित्रता का पता चलता है। दुःख से ही सुख का अनुभव होता है। पाप कर्मों को देख कर ही यह बात शीघ्र समझ मे आजाती है कि कोई पुण्य कर्म भी होते है। मानो एक दूसरे का पैमाना है। स्वर्ग को आकाशी वस्तु माना गया है। किन्तु सभी ऊँची आकाश मे स्थित वस्तुएँ श्रेष्ठ है यह निश्चित रूप से नही कहाजासकता। आकाश के तारे उज्वल अवश्य हैं, किन्तु वे कोमल हैं या कठोर यह नहीं जानते। इसी प्रकार ऊँचे वृक्ष पर बैठी कोकिल का मधुर स्वर सुना अवश्य

जाता है, उस स्वर का कोई रूप-रंग नहीं देखागया। शत-दल और पारिजात इन स्वर्गीय पुष्पो के नाम सुने सबने है, किन्तु उनकी सुगंध का स्वयं अनुभव आज तक किसी ने नहीं किया। हाँ! ऐसे पुरुष-श्रेष्ठ इस संसार मे आपको यत्रतत्र अवश्य मिलेगे जिनके कार्य उतने ही उज्वल है जितने आकाश के तारे; जिनके वचनो मे उतना ही मिठास है जितना कि कोकिल के स्वर मे। इन नर-पुङ्गवो के अन्दर एक विशेषता भी है। इनकी कोमलता निश्चित है, कठोरता तो उनमे होती ही नही। आकाश का स्वर्ग किसी ने इन आँखो से नही देखा; किन्तु इन स्वर्गीय पुरुष-रत्नों से संपर्क भी कियाजासकता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि जिस स्थान पर ऐसे स्त्री-पुरुष निवास करते हों वही स्वर्ग है।"

(१६) क्या तुम्हारा हृदय.. अभागा है (P. 49; L. 5 11)

परस्पर के विश्रम्भालाप मे देवसेना विजया से पृथिवीस्थ स्वर्गीय आत्माओं का उल्लेख करती हुई पूछती है "क्या तुमने कोई ऐसा व्यक्ति नही देखा ?" उत्तर मिलता है 'नही'। दुबारा पूछती है " समझ सोचकर कहो "। उत्तर मिलता है 'हाँ खूब समझलिया'। यह देवसेना का तीसरा प्रश्न है

"क्या तुम्हे अभी तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने तुम्हारा हृदय छीन लिया हो ? जिसने अपने दैवी तेज से तुम्हारे मन पर अधिकार जमालिया हो ? यदि ऐसा हुआ है तो समझले वही स्वर्गीय पुरुष है। स्वर्ग कहते ही उस वस्तु को हैं जो हमारी सुन्दर कल्पनाओं का आश्रय है, जिसे हम हृदयसे प्रेम करते हैं; जिसमे हमारा मन रमण करता है। वह इसी लोक मे मिलती है, परलोक की वह वस्तु नही। जिसे ऐसी वस्तु-विशेष से भेटा नहीं हुआ उसे इस संसार मे भाग्यहीन हीं समझना चाहिये।"

(१७) युवराज·····सुना करता है( P. 50; L 5 9)

युवराज स्कन्दगुप्त और चक्रपालित मे परस्पर बत कही हो रही है। स्कन्द त्याग की प्रशंसा करता है और चक्र कर्मण्यता की। अपने कथन की पुष्टि मे चक्र की युक्ति ध्यान देने योग्य है:

"यह संसार एक सुन्दर चित्रशाला है। इसमे एकसे एक बढ़ कर वीर पुरुष प्रवेश करते हैं और अपने अपने कर्मों के चित्र छोड़ जाते है। इनके अवलोकन से पता चलता है कि ये समस्त शूरवीर स्वावलम्वी रहे होंगे। स्वावलम्वन एक ऐसा गुण है जो समस्त उन्नतियो का मूल कारण है। इसी के प्रसार से प्राणी-मात्र की शक्तियो का विकास होता है। जीवन मे विजय ही उस की होती है जो स्वावलम्वी है, जो अकेला डटा हुआ विपत्तियो और कठिनाइयो का सामना करता है।"

N. B. युध्यस्व विगतज्वरः प्रसंग श्रीमद्भगवद्गीता का है। अर्जुन स्वजनो को सामने डटा देख युद्ध से मुख मोड़ना चाहता है। वह नहीं चाहता कि अपनो को मार तीनलोक का भी राज्य करे, इस तुच्छ पृथ्वी की तो गणना ही क्या ? भगवान् कृष्ण कर्तव्य-कर्म पर आरूढ़ रहने का आदेश करते हैं, और कहते हैं कि आत्मा अमर है। न इसे शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल भिगो सकता है, न पवन सुखा सकता है। अतः निर्भय और निःशंक हो युद्ध करो।"

(१८) चक्र ! ऐसा जीवन·······जान सका हूँ ( P. 50, L. 10 19)

युवराज स्कन्द और चक्रपालित मे बहस छिड़ रही है। स्कन्द त्याग की सराहना करता है और चक्र कर्मवीरता की। चक्र ने भगवद्वाक्य " युध्यस्वविगतज्वर:" का स्मरण कराया। इसी का स्कन्द प्रत्युत्तर दे रहा है

"मित्र चक्र! तुम मुझे भगवद्वाक्य 'युध्यस्व विगतज्वरः' का स्मरण कराते हो। अर्जुन ने भले ही तदनुसार कार्य किया हो। किन्तु यह बात मेरे गले नहीं उतरती। मैं तो ऐसे जीवन को हेय ही समझता हूँ। जिस वस्तु के लिये दिन-रात लड़ना पड़े, रुधिर की नदियाँ बह निकले, वह कदापि मनुष्य-जीवन का ध्येय नहीं बन सकती। मानव-शरीर इस क्रूर-कर्म के लिये नहीं रचा गया। इसका उद्देश्य कोई और ही है। यह दूसरी बात है कि मैं उसे न जानता होऊँ।" लोभ-वश एक दूसरे की जान-माल पर बुरी दृष्टि डालना; क्रोध के मारे लाल नेत्र कर लेना यह सब मनीषी मनुष्य को शोभा नहीं देता।"

(१९) नये ढंग......रंग फीका (P.52, L 18-23, P.53; L 1-3)

देवसेना और विजया में चक्रपालित के विषय में हास्य-रस की बाते होरही है। देवसेना विजया को मनुष्य फँसाने का गुरु सिखा रही है

"बहन विजया! लो तुम्हें मनुष्य फँसाने का मूल-मंत्र बताऊँ। सुन्दर वस्त्र पहनना; जो पहले कभी किसी स्त्री ने न पहने हो ऐसे नये कट और नये फैशन के आभूषणो से शरीर को सजाना। इससे भी बढ़ कर है रुष्ट होने का नाटक रचना। भाएँ चढ़ी हों, माथे पर सलवटे पड़ी हों; कारण पूछने पर मौनव्रत धारण करलेना। जब आग्रह किया जाय तो दो बूंद गरम गरम आसुओं को ढलका देना, और फिर भी फन्दे मे न फँस पावे तो करुणा भरे स्वर से गायन। बस यह मेघनाथ कीसी अमोघ शक्ति है; विफल कभी हो ही नही सकती।"

N. B. वागीश्वरी दिव्द दैवी वाणी; मधुर करुणा भरी वाणी

**करुण-कोमलतान** वेदनापूर्ण मन्द स्वर का राग।

(२०) प्रत्येक.. .. रागिनी है ( P.53, L.12-18 )

देवसेना और विजया का परस्पर वार्तालाप होरहा है। मनुष्य फँसाने की युक्तियाँ बताते हुए देवसेना करुण स्वर से वागीश्वरी की तान (मधुरालाप) का विशेषरूप से उल्लेख करती है। विजया गायन को एक प्रकार का रोग बताती है। उत्तर मे देवसेना का निवेदन

"बहन! संगीत रोग नहीं, वह तो इस समस्त विश्व-मंडल का प्राण है। सृष्टि के कण-कण से संगीत की ध्वनि निकल रही है। जब हरी हरी पत्तियाँ हिलती हैं, उनमें से मधुर स्वर सुनाई देता है। पक्षियों की चहचहाहट मे मिठास है। नदियों की कल-कल मे रागिनी सुनने का आनन्द आता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म शब्द जो प्रकृति में सुनाईदेता है सांगीत-माधुर्य से परिपूर्ण मिलता है। फिर भी तुम यह शंका कर सकती हो कि मनुष्य के स्वर मे संगीत का मिठास क्यो नहीं? इसका भी कारण है। प्रकृति के अन्य जीव अपने प्राकृतिक स्वभाव को नहीं बिगाड़ते; केवल मनुष्य महाशय ही मारे घमंड के स्वर के बाहर बोलने लगता है। उसके पाण्डित्य का अभिमान उसके शब्दों में बेसुरापन उत्पन्न कर देता है। इसी से उसका स्वर विश्व-वीणा के स्वर से मेल नही खाता और वह कर्ण-कटु प्रतीत होने लगता है। अन्यथा विश्व-वीणा की मधुर झंकार से रिक्त कोई स्थान कहीं है ही नहीं।"

N. B. **विकृत** जिसमे विकार उत्पन्न होगया हो, भद्दापन आगया हो। **काकली** धीमा मधुर शब्द, अथवा स्वर।

(२१) घने प्रेम-तरु-तले ···· ··प्रेम तरु-तले (P.54:L.6-17)

विश्व-वीणा का उल्लेख करती हुई देवसेना प्रभातकाल के प्रफुल्लित पारिजात वृक्ष का वर्णन करती है कि वह किस प्रकार अपने सौरभ की तान में श्रमित पथिकों को विश्व-प्रेम का राग सुनाता है

"अरे संसार के तापों से सन्तप्त पथिकों! तुम इस जलती हुई ज्वाला में बेसुध से किधर मुख उठाये चले जा रहे हो? देखो यह श्रद्धा-रूपी शीतल नदी बह रही है, टुक इसके किनारे बैठ विश्राम करलो। और देखो! यह कैसा सघन प्रेम-तरु लहलहा रहा है! कैसी इसकी विश्वास-मयी शीतल छाया है! यहाँ तुम्हें झुलसती हुई बालू के स्थान में पुष्प-पराग मिलेगा, जिसे प्रेमाश्रुओं ने सींच और भी अधिक कोमल बना दिया है। छल कपट की तो इस पवित्र स्थान पर कोई आशंका ही नहीं। हाँ! एक बात अवश्य है। यह जो वायुवेग से गिरे हुए फूल दिखाई देते हैं वे अपने मन की पीर और लघु जीवन की व्यथा-भरी कथा तुम्हें सुनाना चाहते हैं। कृपा-पूर्वक इसे भी सुनते चलिये। देखिये! यह जो कुछ आप देख रहे हैं, यह सब माया का तमाशा है। इसमें लिप्त न हूजियेगा। केवल इसके मधुर सौन्दर्य-रस का तटस्थ-रूप से पान कीजिये, अधिक आगे न बढ़िये, अन्यथा डूबने का भय है। इसका सदुपयोग करने का भी आपको अधिकार है। इसके द्वारा आप अपनी जीवन-बेल सींच, फल-फूल सकते हैं और हरेभरे पल्लवों के नीचे सुख की नींद ले सकते हैं। आइये! इस प्रेम-तरु-तले थोड़ी देर स्नेह से गले मिल बैठें।

परस्पर के प्रेम, श्रद्धा और विश्वास से शोकाकुल संसारी जीवन को सुखमय बनाने की कैसी सुन्दर घुट्टी लेखक ने देवसेना के मिस से तजवीज की है।"

(२२) समष्टि······वहिष्कार हो (P.73, L.8—12)

मालवेश बन्धुवर्म्मा आर्य-राष्ट्र की रक्षार्थ मालव प्रदेश को स्कन्द की भेंट कर उज्जयिनी को राष्ट्र का केन्द्र-स्थान बनाना चाहता है, जिससे विदेशी वर्बर हूणों का देश से आसानी के साथ काला मुँह किया जासके। किन्तु मालवेश्वरी जयमाला मार्ग में रुकावट उपस्थित करती है। देवसेना अपनी भाभी को राष्ट्र के अर्थ मे सच्चा स्वार्थ सिद्ध करदिखाने का प्रयत्न कर रही है। प्रत्युत्तर मे जयमाला ने दूसरा पक्ष लिया है—

"प्यारी ननद! तुम भूल कर रही हो। क्या यह सच नहीं कि समष्टि में व्यष्टि भी सम्मिलित है—अर्थात् एक व्यक्ति भी तो समाज का ही अंग है? इसलिये व्यक्ति का हित वास्तविक रूप से समाज का ही हित है। माना कि सब से प्रेम करना और प्राणी-मात्र के कल्याण की कामना करना सब का परम धर्म है। पर सब में आपा भी तो सम्मिलित है। फिर उसकी हितकामना को क्यों भूलें? क्यों न यह मानलें कि अपने हित में ही विश्व का हित है। कैसी सबके मन की सी दलील!

N. B.-समष्टि समाज, मिलाजुला सबका एक गुट्ट।

व्यष्टि अकेला व्यक्ति, पृथकपन, अकेलापन।

(२३) माँ तो तुम्हारी····मानते (P 76, L.-11-14)

माता कमला देशद्रोही भटार्क को जन्म दे अपने को कलंकित हुआ समझती है। नहीं-नहीं, उसे सन्देह है कि वह उसका पुत्र है भी कि नहीं। भटार्क इस बात को स्थिर-सत्य बताता हुआ अपनी शूरवीरता की अपने मुख आप प्रशंसा कर उसे गौरवान्वित होना सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है

"प्यारी माँ! क्या तुम्हारे विचार से मैंने तुम्हारी आशाओं पर पानी फेरा है ? न, माँ ! कदापि नहीं। संसार साक्षी है कि मेरी तलवार की आग के सामने कोई जीवित नहीं बचा। जब कभी लड़ाई के मैदान में मैंने गर्जना की, कोई शत्रु ऐसा दिखाई न दिया जिसका हृदय मारे भय के काँप न उठा हो। जननी! तू समस्त भारत मे घूमफिरकर देख ले; एक भी क्षत्रिय वीर तुझे ऐसा न मिलेगा जिसके ऊपर तेरे पुत्र–सिह भटार्क की धाक न जमी हो। अतः तुझे लज्जित होने का कोई अवसर नहीं।"

N B. खड्गलता और आग के फूल बरसने में रूपक अलंकार।

(२४) कृतघ्न······नहीं रह सकता (P 78,L.4-7)

भटार्क उज्जयिनी में स्कन्द के अभिषेक मे विघ्न उपस्थित करने गुप्त-रूप से विचरण कर रहा है। यहां उसकी माता कमला जो उसकी कृतघ्नता से रुष्ट हो चली आयी है, मिल जाती है। भटार्क उसे लौटचलने के लिये आग्रह करता है। कमला उसके लोभवश गुप्त षड्यन्त्र रचने पर धिक्कारती है। इसी बीच गोविन्दगुप्त आदि का प्रवेश हो जाता है, और उसे निम्न लिखित फटकार मिलती है

"अरे नीच! क्या तू भी अपने को वीर समझे बैठा है ? मूर्ख ! सच्चा वीर कभी अपने बल के घमण्ड मे मतवाला नहीं होता। शक्ति के मद मे वह कभी अन्धा नहीं बनता। उचित अनुचित का उसे सर्वदा ज्ञान बना रहता है। वह यह भली भाँति जानता है कि कोरे हथियार के बल-भरोसे वीरता की डींग नहीं हाँकी जा सकती। वीर पुरुष वही है जो न्याय के

पक्ष पर लड़े। तूने अन्याय का पक्ष ग्रहण किया है और युवराज स्कन्दगुप्त के स्थान में पुरुगुप्त की हिमायत कररहा है। अतः अन्याय का पक्षपाती बनकर तू गौरव से ऊँचा शिर कदापि नहीं उठा सकता।"

N B कृतघ्न जो किये कराये उपकार को भूल जाय। नष्ट करदे।

(२५) इस साम्राज्य... देखूँ (P. 93, L. 3-18)

श्मशान मे प्रपञ्चबुद्धि अपनी क्रूर-साधना में संलग्न है। संयोग से महाराज स्कन्दगुप्त भी टहलते हुए उधर आ निकलते हैं और मनही मन शेक्सपियर के प्रिन्स हैम्लेट की भाँति जीवन की विकट समस्या पर गुनगुना रहे है

"साम्राज्य का बोझ शिर पर लादना भी टकासी जान के लिये एक बवाल खरीद लेना है। देखो न! इसके कारण जिधर देखो उधर अशान्ति ही अशान्ति दिखाई पड़ती है। न मैं सुख की नींद सो सकता हूँ और न मेरे कुटुम्बी जन। हमारे ही कारण राज्य भर में अशान्ति फैली हुई है। नहीं, नहीं, कुटुम्ब को क्यों दोष दूँ? मैं ही इस समस्त अनर्थ का कारण हूँ। जान पड़ता है इस संसार के लिये अकेला मैं ही पाप-ग्रह धूम्रकेतु हूँ जिसके उदय से विश्वभर मे खलबली मँचउठी है। किन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि इसमे मेरा कोई निजी दोष नही। अपने हृदय का मुझे पूरा विश्वास है, उसमे स्वार्थ का लवलेश भी नहीं। फिर भी मैं इस साम्राज्य के झंझटों मे संलग्न सा क्यों दिखाई देता हूँ, इसका एक मात्र कारण यही है कि क्षत्रिय-धर्म मुझे विवश करता है कि मैं अपने पूर्वजों से सुरक्षित इस गुप्त-साम्राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले इसकी वर्तमान दुर्दशा से

इसका त्राण करूं। मुझे न किसी से राग न किसी से द्वेष। हाँ! विजया की ओर एक बार हृदय अवश्य आकर्षित हुआ था, किन्तु आज तो उसका स्मरण करके हृदय काँप उठता है। जिसे कभी हमने सुखकरी वस्तु समझा था, आज वही घोर अनर्थ कराने पर उतर पड़ी है। देवसेना की बलि चढ़वाने तक का उद्यम है। अरे! सामने का यही पिशाच प्रपंचबुद्धि ही तो उस निर्दोष अबला की बलि चढाने वाला है। कितना क्रूर और भयानक मनुष्य है! देखते ही हृदय काँप उठता है। पिशाच-जैसा लगता है। अच्छा, जब तक मातृगुप्त इधर आवे, छिपकर देखूँ यह क्या करता है।"

N.B.—वन्या लवलेश। क्रिया-कलाप राज्य के समस्त कार्य। उल्कापिण्ड टूटता हुआ तारा अतः अनर्थ का चिह्न। धूमकेतु पुच्छल-तारा, जिसके विषय मे यह प्रसिद्ध है कि जब वह दिखाई देता है, या तो राजा मरता है या प्रजा मे दुर्भिक्ष और महामारी आदि अनर्थ होते है।

(२६) संसार का ...... कौन है? (P. 94; L. 1—3)

श्मशान मे टहलती हुई राजकुमारी देवसेना को देख विजया ने आश्चर्य प्रकट किया है। उत्तर मे देवसेना कहती है:

"सखी! तुझे यह स्थान भयंकर वस्तु दिखाई पडता होगा। मैं तो इसे एक शिक्षक-रूप मे पाती हूँ जिसके मुख से यद्यपि कोई शब्द तो नही निकलते, किन्तु शिक्षा निरन्तर मिलती रहती है। तू ही बता, दूसरा ऐसा कौनसा स्थान है जिसे देख हमे संसार की असारता का, और साथ ही साथ सर्वनियन्ता परमेश्वर की सर्वशक्तिमानता का प्रत्यक्ष अनुभव होता हो?"

N B मूक-शिक्षक वह शिक्षक जो शब्दों द्वारा नहीं अपितु संकेत द्वारा शिक्षा देता हो। श्मशान ही एक ऐसा शिक्षक

है जिसे देख हमे संसार की नश्वरता और परमेश्वर की सर्वशक्ति मत्ता का भान होता है। न जाने कितने मियाँ अकड़-बेग इस संसार मे आये और श्मशान को भेट हुए ! आज तक सिवाय परमेश्वर के जीवन और मृत्यु पर किसी अन्य का अधिकार नही हुआ।

(२७) क्यों घाव······छिप जाना है (P. 103, L 7 11)

जयमाला, देवसेना तथा अन्य सखियों के बीच, देवसेना के उन्मनी होने के विषय मे गुप्त वार्तालाप हो रहा है। प्रसंगवश उसके स्कन्दगुप्त के प्रति प्रेम की चर्चा छिड़जाती है। देवसेना उत्तर मे निवेदन करती है कि वह यह पसन्द नहीं करती कि जनता उस पर यह दोषारोपण करे कि मालव देकर देवसेना के लिये सम्राट खरीदे गये हैं। इस पर एक सखी यह वाक्य-वाण छोड़ती है "तो क्या हरीहरी कोपलों की टट्टी मे फूल खिलरहा है?" आशय यह है कि क्या जो कुछ सुना जारहा है कि देवसेना सम्राज्ञी बनेगी यह सब धोखे की टट्टी है? असत्य है? देवसेना का उत्तर भी कैसा व्यथा-भरा है:

"सखी! मुझ जली को और अधिक क्यो पीड़ा देती है? मैंने कदापि यह नही इच्छा की कि अपने पाणिग्रहण की चर्चा छेड़ महाराज का बदनाम करूँ। बदले मे मुझे ग्रहण करके उनका अपमान ही तो होगा। प्रेम उन्हे मैं अवश्य करती हूँ। किन्तु इस प्रेम-रस का आस्वादन एकान्त और चुपचाप रहकर ही करना चाहती हूँ। जब कभी हृदय के अन्दर व्याकुलता की हूक उठती है, वीणा हाथ मे ले, विश्व-वेदना की लय मे लय मिला, आत्म-विस्मरण कर लेती हूँ। सारी व्यथा विलुप्त होजाती है।"

N. B. घाव पर नमक छिड़कना एक प्रसिद्ध कहावत। आशय किसी दुखिया को चिढ़ाकर और अधिक दुखी करना।

(२८) वीरो !......लौट जाय (P 108; L. 3 10)

गाँधार की घाटी मे हूणो के आक्रमण को रोकने के लिये मालव की वीर सेना कूँच करने वाली है। स्वयं मालवेश बन्धुवर्मा वीरो को उत्तेजित कर रहे हैं

"वीरो! मत समझो कि तुम शूरवीरता में वर्वर हूणो से कम हो। तुम भी एक दिन विश्व-विजयी बनसकते हो। इन विदेशी वर्वरो को परास्त करो। तुम्हारी वीरता के राग स्वर्ग में देवाङ्गनाएँ अपने वीणा पर गागाकर तुम्हारा मनोरंजन करेंगी। आर्य-सैनिको! तुम जैसा साहसी आज तक संसार ने उत्पन्न नहीं किया। यह वर्वर हूण भी, जिन्होने रूम-साम्राज्य तक को तहस नहस कर डाला है, भली भाँति जानते हैं कि रण-विद्या मे तुम उन नृशंसो से कहीं वढ़चढ़कर हो। वह दिन शीघ्र आ रहा है जब कि तुम्हारी वीरता की धाक वे स्वीकार करेंगे और तुम्हारा जय करना एक-टेढ़ी खीर हो जायगी। देखो! रणक्षेत्र से लौटने का नाम न लेना। जिसे लौटना हो वह आगे पग न वढ़ावे, यहीं से लौट जाय।"

(२९) कहती हूँ......उडादूँगी ( P. 116; L. 9-18 )

विजया के सौन्दर्य्य और चातुर्य पर अनन्तदेवी मुग्ध है। वह चाहती है कि उसे पुरुगुप्त के साथ राज-सिंहासन पर आरूढ़ देखे। विजया ने अपना हृदय भटार्क को समर्पण किया हुआ है। अनन्तदेवी हट करती है। विजया उसे पासा पलट देने तक की धमकी देती है। वातों वातों में वात वढ़जाती है और

विजया इतनी निर्भीक हो जाती है कि उससे उत्पन्न सन्तान को 'छि: तक कह डालती है। अनन्तदेवी समझ कर जीभ खोलने की सूचना देती है। उत्तर भी उतना ही निःशंक मिलता है

"रानी! मुझे तुम्हारा भय नहीं! तुम मुझे यह कहने से नहीं रोक सकतीं कि संसार का कोई प्रलोभन, कोई भय मुझे भटार्क से प्रथक नहीं कर सकता। चाहे जितनी कठिनाइयाँ मेरे मार्ग मे आवे, मैं दृढता के साथ उनका सामना करूँगी। और यदि तुमने मेरे प्रियतम को मुझ से छीनने का प्रयत्न किया, तो समझ लेना मैं पहाड़ी नदियों की बाढ़, ज्वाला मुखी पहाड़ फूट निकलने, और प्रलय काल की अग्नि की लपट की सदृश्य स्वरूप धारण कर तुम्हारे स्वप्न महल को जलाकर भस्म कर-डालूंगी। मुझे राजसिंहासन पर बैठने की अभिलाषा नहीं। मुझे तुम्हारे विलासप्रिय और युवावस्था मे वृद्ध-प्रायः राजकुमर को वरने की कोई इच्छा नहीं। मेरे मार्ग मे रुकावटे न डालो, नहीं तो तुम्हारी समस्त कुमन्त्रणाओ का भंडा-फोड़ कर उन्हे दमकेदम में निफल करा दूँगी।"

N. B. विस्फोट विविध प्रकार से फूट वहना।

(३०) मैं कहो ..... किधर ? ( P. 117; L. 5-16 )

अनन्तदेवी और विजया के परस्पर वाद-विवाद मे बात इतनी वढ़ जाती है कि विजया अनन्तदेवी की समस्त कुमन्त्र-णाओ को फूंक से उड़ादेने की धमकी देती है, और अनन्तदेवी ऐसी आग लगाने का संकेत करती है जो समुद्र से भी न वुझे अन्त मे विजया अपनी क्षणिक-वुद्धिपन पर पश्चात्ताप करती हुई कहती है

"हाय ! मैं धोबी के कुत्ते की भाँति न घर की ही रही न घाट की। न स्कन्दगुप्त ही मिला, न भटार्क ! बर्बर हूण अपने देश के अन्दर कोलाहल मचा रहे हैं। उधर स्कन्दगुप्त को अपनी ओर आकर्षित करना इतना कठिन जितना गम्भीर समुद्र को तैर कर पार करना। स्त्रियों का मन कितना चंचल ! क्षण मे रुष्ट, क्षण मे तुष्ट ! क्रोध के समय अपने पराये तक की सुध नहीं रहती। जो मन मे आया बकदिया। जिन्हे स्नेह की दृष्टि से देखना चाहिये था (स्कन्द और देवसेना की ओर संकेत) उनका तिरस्कार किया, और जिन पर घृणा करनी उचित थी ( भटार्क और प्रपंचबुद्धि की ओर संकेत ) उनको अपना समझ प्रेम किया। कैसा अज्ञान ! कैसी हृदय की नीचता !! हम दूसरो के साथ उसी हद्द तक प्रेम और सहानुभूति प्रकट करते है जब तक हमारे स्वार्थ साधन मे कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। किन्तु क्या यह सच्चा प्रेम और सच्ची सहानुभूति है ? नहीं ! स्नेह, क्षमा और उदारता वही सच्ची है जो निस्वार्थ भाव से प्रदर्शित कीजाय। हा ! यह मेरा अतुल धन और हृदय किस अर्थ के ? इन्हे मै किसे देडालूँ ? और कहाँ जाऊँ ? कुछ समझ में नहीं आता।" पगली सी इधर उधर चक्कर काटती है।

## ३१) स्नेहमयी......ओह ! (P.118, L, 12 17)

एक पद-च्युत नायक को जंगली हिंस्र पशु से उपमा देती-देती विजया पगली सी बन बेसुध हो जाती है और मन ही मन बड़बड़ा रही है

"अरे ! मैंने कितनी मूर्खता की ! देवसेना मुझे कितना प्यार करती थी ! मैंने फिर भी उसे सन्देह की दृष्टि से देखा।

देवता स्वरूप महाराज स्कन्दगुप्त से द्वेष किया। उन्होंने स्वयं मेरे पाणि-ग्रहण की इच्छा की, किन्तु मैंने उस स्वर्गीय सुख को स्वयं अपने पैरों ठुकरा दिया। मैंने अपना धन, रूप और यौवन भी दूसरो की भेंट करना चाहा। और वह भी इसीलिये न कि महाराज को नीचा दिखाया जाय? हाय! मैंने स्वार्थियों के फन्दे मे फसकर यह लोक तो विगाड़ा ही, परलोक भी नष्ट कर दिया, न दीन की रही न दुनियाँ की!"

N.B. प्रतारणा प्रवञ्चना, धोका, ठगी, जाल, फन्दा, फरेब।

(३२) अहंकार मूलक·· ·· रक्तपात क्यों? (P. 130; L 11 17)

बौद्धकाल से पहले भारत मे पशु-बलि चढ़ाने का बहुत प्रचार होगया था। "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" कहकर यज्ञो मे मनमाना पशु-वध होता था। महात्मा गौतमबुद्ध ने इसका विरोध किया। अतः ब्राह्मणो और बौद्धो मे इस बात पर उसी प्रकार मार-काट हो जाती थी जैसे आजकल गो-वध के प्रश्न पर हिन्दू-मुसलमानो मे शिर फूट जाते है। ब्राह्मण लोग यज्ञ में पशुबलि को धर्म समझ उसके लिये आग्रह कर रहे हैं, और बौद्ध श्रमण निरीह प्राणियो के वध को कोरा अधर्म बता प्राण-पण से उसका विरोध कर रहा है। इसी बीच सिंहल के राजकुमार धातुसेन का प्रवेश होता है, और वह एकत्रित ब्राह्मणो को इस प्रकार समझा रहा है

"देखिये! बौद्ध-धर्म और पौराणिक-धर्म मूल में एक ही हैं, आगे चलकर शाखाओं मे भेद पड़गया है। गौतम बुद्ध ने कोई नयी बात नहीं की, हाँ! सुधार अवश्य किया। अहंकार की

मात्रा अधिक बढ़ गयी थी। आत्मा ही सब कुछ है, और प्रकृति पर उसका पूर्ण अधिकार है, जो चाहे सो उसके साथ व्यवहार करे, इस बात का बुद्धदेव ने खुले प्रकार से विरोध किया। उनका कहना था कि क्या मनुष्य और क्या अन्य जीव सब में एक ही आत्मा व्याप्त है। इसी से सब एक सा सुख-दुख अनुभव करते हैं। इसी से पशुबलि देख उनके हृदय मे अत्यन्त करुणा उत्पन्न हुई। आपकी उपनिषद् भी जो ब्रह्म को नेति-नेति कह कर पुकारती है, विश्वात्मा की अनन्तता को ही सिद्ध करती हैं। इसका आशय भी यही है कि मनुष्य की आत्मा और अन्य जीवों की आत्मा जुदी-जुदी वस्तु नहीं। पूर्व-कालीन ऋषि लोग इसको मध्यमा–प्रतिपदा अर्थात् मध्यम मार्ग के नाम से पुकारते थे। आत्मा की कोई पृथक सत्ता नहीं। कुछ भी सही बुद्ध-धर्म, आर्य-धर्म के विकृत रूप का एक सुधार मात्र है। फिर परस्पर का द्वेष और लड़ाई झगड़े सब व्यर्थ ही हैं।"

N.B. आत्मवाद् प्रकृति से भिन्न, कोई वस्तु विशेष, जिसे सुख-दुख, हर्ष-शोक का अनुभव होता है, जिसके बिना शरीर मिट्टी है।

विश्वात्मवाद् क्या मनुष्य और क्या अन्य जीव सबमे एक ही आत्मा व्याप्त है इसी भावना का नाम विश्वात्मवाद है।

अनात्मवाद् पञ्च तत्वों से मिलने से यह शरीर बना है और मृत्यु भी इन्हीं का विकार मात्र है। इनसे जुदी 'आत्मा' नाम की कोई वस्तु नहीं। यही नास्तिकवाद् भी कहलाता है।

मध्यमा-प्रतिपदा बीच का मार्ग। अर्थात् आत्मा की अनन्तता। इसी को 'नेति-नेति' भी कहते है (न+इति)।

(३३) सप्तसिन्धु-प्रदेश.. ...सुरक्षित होगा (P.131;L.3-23)

राज कर्मचारी, दंडनायक, ब्राह्मण लोगों को बलि चढ़ाने से रोक रहा है। ब्राह्मण लोग धर्म की दुहाई दे वलि के लिये आग्रह कर रहे हैं। सिहल का राजकुमार धातुसेन उन्हे उनकी अवनत दशा का कारण समझाता हुआ कहता है कि जिसे लोग धर्म समझे वैठे हैं वह वास्तव मे अधर्म है। वास्तविक धर्म को अपनी रक्षा के लिये पशुवल-प्रयोग की आवश्यकता नहीं।

"अरे धर्मान्ध ब्राह्मणो! देखते नहीं तुम्हारे और बौद्धो के परस्पर वैमनस्य के कारण देश को कैसी दुर्दशा हो गयी है। इन सप्त-नदियों से प्रवाहित पवित्र-भूमि पर विदेशी क्रूर हूणो ने अपना आतङ्क जमा रक्खा है। मारे भय के कोई उनके सामने शिर नहीं उठा सकता। जिस धर्म का तुम ढोंग रचते हो उसकी भी दुर्दशा हो रही है। क्या तुमने कभी इस वात पर भी विचार किया है कि धर्म की रक्षा कर सकने वाले क्षत्रिय राजा आज क्यो नहीं दृष्टि पड़ते? क्या कारण है कि जो ब्राह्मण त्याग और तप का जीवन विताते थे आज वे एक एक टुकड़े के लिये दूसरो का आसरा तकने लगे हैं? क्या कारण है कि लोग अपनी अपनी वृत्ति और जीविका छोड़ दूसरो के पेशे अपनाने लगे हैं? धर्म भी एक प्रकार का व्यवसाय ही वन गया है। पुत्र, धन, यश, विजय, स्वर्ग और मोक्ष तक पंडित और पुजारियो से दक्षिणा देकर खरीदे जा सकते हैं। आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे लोगो से धर्म का ढोंग रचकर मन माना धन ठगा जा रहा है। जिसके पास धन नहीं वह तो मानो धर्म का आचरण कर ही नहीं सकता। अत अव धर्म साधारण दरिद्र जन-समुदाय की अपनी निजी वस्तु नहीं रही। जिसके पास धन है वही इस धर्म-जाल मे फँसने योग्य है, अन्य नहीं। मूर्ख जनता भी अव यही समझने

लगी है कि धर्म भी धन से ही खरीदा जा सकता है; अतः जिसे देखो उसे धन कमाने के पीछे पागल हुआ पाओगे। धर्म विचारा इसीलिये पीछे छोड़ दिया गया है। आप बड़े से बड़ा पाप कर्म कीजिये मदिरापान कीजिये, व्यभिचार कीजिये, मन-माना कुकर्म कीजिये, और प्रातः गोदान कर दीजिये—बस फिर आप ही धर्म-मूर्त्ति, धर्मावतार समझे जाँयगे। किन्तु मित्रो! ऐसा धर्म निर्बल धर्म होता है। वह स्वयं अपनी टाँगों के बल खड़ा नहीं रह सकता। इसीलिये उसकी रक्षा के लिये तुम सरकार के मुख की ओर ताकते हो। वास्तविक धर्म अपनी रक्षा आप करता है, उसे किसी अन्य पशु-बल-प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं। अतः परस्पर मिल बैठो, और देश की रक्षा करो।"

### (३४) सर्वेऽपिसुखिनः...... माप्नुयात् ( P:132;L. 8-9 )

सिहल का राजकुमार धातुसेन ब्राह्मणों के पूर्व गौरव का कारण बतलाता हुआ बलि चढ़ाने पर उद्यत ब्राह्मणों को समझा रहा है कि उनके सम्मान का कारण उनकी यह विश्व-कल्याण-कामना थी।

"सब लोग सुखी हो, सब रोग रहित रहें। सब कल्याणों को देखे, किसी के भाग्य मे दुःख न हो॥" कैसी सुन्दर सबके कल्याण की भावना!

### (३५) धर्म के अन्ध भक्तो.....कोमल करें (P 132 L 16- 22; P. 133, L. 1-4)

सिहल द्वीप का बौद्ध-राजकुमार पशु—बलि चढ़ाने पर उद्यत ब्राह्मणों को समझा रहा है कि धर्म की विशालता इस में है कि वह समयानुकूल विकसित होता रहे:

"अरे भोले अन्धविश्वासी ब्राह्मण लोगो ! आप भूल कर रहे हैं। मनुष्य कितना ही विज्ञ और विद्वान हो, वह कभी सर्वज्ञ नहीं बन सकता; अल्पज्ञ ही रहेगा। यही कारण है कि वह निरन्तर ज्ञान वृद्धि करने का प्रयत्न करता रहता है। विश्व-विज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति का यही मूल कारण है। धर्म भी कोई पूर्ण नहीं। सभी धर्म-प्रचारकों को किन्हीं न किन्हीं असत्य रूढ़ियों का आसरा तकना ही पड़ता है। किन्तु इन रूढ़ियों को समयानुकूल बदल डालने की आवश्यकता है। यदि अब न बदलोगे, तो कल समय बदलवा लेगा। अतः कल्याण और बुद्धिमत्ता इसी में है कि हठ-धर्मी को छोड़ नये आवश्यक परिवर्तनों को अपनालिया जाय। पौराणिक-धर्म और बौद्ध-धर्म एक ही मूल-धर्म वैदिक-धर्म की दो शाखाएँ हैं। अतः हम दोनों का यह परम कर्तव्य है कि उदारता पूर्वक एक दूसरे के साथ सद् व्यवहार करें जिससे देश में दुःख और दारिद्र्य का नाश हो, एवं सुख और समृद्धि का प्रसार हो।"

N.B.—विकास क्रमशः, उत्तरोत्तर-उन्नति, परम्परा पूर्व काल से चला आता हुआ क्रम। विवृत विकसित, उन्नत। हठधर्मी—बिना तर्क की हठ, अन्ध-विश्वास। आगन्तुक आने वाला। क्रमिकपूर्णता क्रमशः विकास।

(३६) आश्चर्य......हो जाँय (P. 135, L 3 7)

कविवर मातृगुप्त देश-दशा की उन्नति की ओर से हताश हो मन ही मन हारी-हारी बातें कर रहा है। विजया जिसके हृदय की ग्रन्थी खुल चुकी है, और अपनी दुष्कृतियों पर अपने तईं मनमाना कोस चुकी है, मातृगुप्त को हतोत्साह न होने के लिये समझा रही है

"अपने उद्योगो की असफलता पर न आश्चर्य करने की आवश्यकता है, न शोक मनाने की। आवश्यकता अब है तो इस बात की कि कवि और साहित्य-सेवी लोग अपनी लेखनी सम्हाले। अब प्रेमी और प्रेमिकाओं की प्रेम-गाथा गाने का समय नहीं रहा। और नहीं रहा अवसर अब कोमल कल्पनाओ की तरंगो मे बहने का। आवश्यकता अब इस बात की है कि देश के नवयुवक और नवयुवतियो को जगाने के ऐसे जोशीले राग गाये जॉय जिससे मरने जीने का विचार छोड़ वे देशोद्धार की धुन में संलग्न हो जॉय। मरना एक दिन जब अमिट ठहरा तो देश-सेवा करते करते क्यो न प्राण-त्याग करे ?"

N B. उद्बोधन जागृति, ज्ञान। नश्वरता एक न एक दिन अवश्य नाश होने की दशा।

(३७) लक्ष्मी की लीला ·· ··स्वामी है (P. 135; L. 21 22; P. 136, 1 4)

मातृगुप्त कायरो की भॉति अपने उद्योगो की असफलता पर हताश हो भाग्य को कोस रहा है

"अरे! यह लक्ष्मी भी बड़ी चंचला है। कमल के पत्तो पर जैसे जल-विन्दु ठहरने नहीं पाते, आकाश मे बादल जैसे सदैव चलते फिरते दिखाई देते हैं, ओस की छोटी छोटी बूँदे प्रभात के सूर्य को देख शीघ्र अदृश्य हो जाती है; वैसे ही यह लक्ष्मी भी किसी के पास अधिक समय तक नहीं टिकती। भाग्य की चमक भी वैसी ही क्षणिक है जैसी मेघ-मण्डल मे छिपी बिजली की चमचमाहट। अभी प्रकट, अभी विलीन। मनुष्य भूतकाल से भले ही लाभ उठाले, भविष्य नितान्त अन्धकार-मय है। उसका कोई विश्वास नहीं किया जासकता।"

N. B. **नीहार-कणिका** ओस, कुहरा, पाले की छोटी बूँद। **अदृष्टि-लिपि** भाग्य के अक्षर। लोगों का विश्वास है कि भला बुरा भाग्य विधाता पहले ही से लिख देता है।

**(३८) बौद्धों का निर्वाण ..... संतरण है (P 138; L, 1 18)**

हूणों का आक्रमण रोकने के लिये कुभा नदी को पार करते समय, भटार्क और पुरगुप्त की देश-द्रोह-पूर्ण कुमंत्रणा से नदी का बाँध तोड़ दिया जाता है, और अचानक बाढ़ के आजाने पर स्कन्द ससैन्य बह जाता है। बहुशः अश्वारोही नदी की भेंट होते हैं, किन्तु दैवयोग से स्कन्द बाल-बाल बच जाता है। शत्रु विजयी होता है और गुप्त-साम्राज्य के सारे स्वप्न विलुप्त-प्राय: हो जाते हैं। छिपता छिपाता विचित्र अवस्था में स्कन्द कमला की कुटिया के समीप आ निकलता है. और मन ही मन करुणा-सागर से इस प्रकार आत्म-निवेदन कर रहा है

"अन्तर्यामिन्! आप घट-घट निवासी हैं। आप से कोई छिपा ही क्या सकता है? मैं राज्य का भूखा नहीं। ऐश्वर्य्य मुझे नहीं चाहिये। हाँ! चाहिये मुझे सांसारिक वासनाओं से पूर्ण निवृत्ति जो बौद्ध-धर्म का परम लक्ष्य है। आनन्द आता है मुझे योग-समाधि में। मैं चाहता हूँ कि मैं अपने तईं एक मात्र भूल जाऊँ। जब कभी मुझे राजा होने का चेत होता है, झट से अपने को सावधान कर लेता हूँ कि अरे मूर्ख! तू तो जगन्नियन्ता के हाथ का खिलौना-मात्र है, तेरी दशा तो श्रम-जीवियों से भी बुरी है।

मैं यह भी जानता हूँ कि ससारी जीवों को जो आप दुख प्रदान करते है,यह भी आप की अनन्त कृपा का ही फल है,क्योंकि

ये हमें चेत करने, और कुपथ त्याग सत्पथ पर लौटाने के लिये होते हैं। इसी से मैं दुखों से नहीं डरता, और नहीं मुझे लोक-लज्जा का संकोच है। मैं यह भी भली भाँति समझता हूँ कि सांसारिक वैभव ही बन्धन का कारण है, और इसकी ओर से विमुख होना ही मोक्ष का प्रधान साधन, और आपके समीप पहुँचने का मार्ग है। किन्तु हा नाथ! क्या आपको यह शोभा देगा कि गुप्त-साम्राज्य के सर्व-नाश का कलंक आपके सेवक के सिर बँधे? भगवन्! इसके अनुमान मात्र से मेरे हृदय में हिलोर उठ खड़ी होती है, देशाभिमान एक-दम जागृत हो उठता है। भले ही मुझ से मेरे अधिकार छिन जाँय! मैं इसमें भी प्रसन्न रहूँगा कि कोई अन्य मेरा वंशज मेरा स्थान ग्रहण करले। किन्तु मेरी यह हार्दिक कामना है कि येन केन प्रकारेण गुप्त-साम्राज्य ज्यों-का-त्यों हरा-भरा बना रहे जिससे नीति और सदाचारों की रक्षा होती रहे। खैर! ऐसी दशा में जब सब कुछ नष्ट हो चुका है, और हमको इस बात तक का ज्ञान नहीं रहा कि हमें क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये; भविष्य की भी कोई आशा दिखाई नहीं देती, जिधर देखो उधर घोर अन्धकार ही दिखाई देता है; एक दुस्तर सागर सामने फैला हुआ है, बचाव की कोई सूरत दिखाई नहीं देती, अब सिवाय आपके अन्य सहारा नहीं रहा, आप से ही प्रार्थना है कि कम से कम इतना तो कर दीजिये कि—

आपकी वही सुरीली मुर्ली की तान पुनः प्रध्वनित हो जिसने अबोध ग्वालों के अन्दर नवीन स्फूर्ति उत्पन्न की थी, नवजीवन प्रदान किया था, उनके दुःख और क्लेशों के पहाड़ को अपनी दिव्य उँगली के संकेत मात्र से उखाड़ कर फेंक दिया था। हमारे दैन्य और दासता का पहाड़ उस छोटे 'गोवर्धन' से

कहीं बढ़कर दुष्कर और दुर्भेद्य है। किन्तु आपको वेदों में 'सविता' के नाम से पुकारा है, आपकी विलक्षण प्रेरक शक्ति ही आपकी मनभावनी मुर्ली है। उसके द्वारा ही हमारे 'विश्वानि दुरितानि' समस्त दुर्गुण और दुर्व्यसन 'परासुव' दूर भगाइये और "यद्भद्रं" और जिस बात से हमारा और हमारे इस भारतीय राष्ट्र का कल्याण हो 'तन्न' वही हमे 'आसुव' सब ओर से प्रदान कीजिये, जिससे हमारी दासता की दृढ जंजीरे एक-दम चटख कर टूट जॉय, और हम पूर्ववत स्वतंत्र बन जॉय। स्वाधीनता का वही मधुर राग हम पुनः आपकी दिव्य दैवी मुर्ली द्वारा सुनकर अपना सुखमय जीवन बनाने की लालसा रखते हैं। कृपाकर उसे पूर्ण कीजिये। सच्चिदानन्द! आप ही हमे सत्ता दीजिये, चैतन्यता दीजिये, आनन्द फिर मिल ही जायगा।"

N. B. निर्वाण बौद्धधर्म के अनुसार जीवन की वह अवस्था जिससे मनुष्य संसार की समस्त वासनाओ से रहित हो जाता है।

समाधि योग शास्त्र के अनुसार योग की तीन अवस्था धारणा, ध्यान और समाधि। इस अवस्था मे मन निष्क्रिय और निश्चेष्ट हो जाता है, इसी से अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है। इसी को परमानन्द कहा गया है। इसी अवस्था मे परमात्मा का दर्शन होता है।

वट-पत्र--शायी—मारकंडेयपुराण का प्रसंग है। मारकंडेय ऋषि ने जीवित प्रलय देखने की इच्छा की। ऐसा हुआ। महासागर में डुबकियॉ लगाते-लगाते एक वट-वृक्ष का आश्रय लिया, जिस पर एक बालक स्वयं 'बालमुकुन्द' भगवान् अपने पैर का अॅगूठा पीते हुए दिखाई दिये। उन्ही के दर्शन से मोह-निद्रा टूटी।

(३९) कौन कहता है······वीर (P. 141; L 1-11)

कुभा नदी के मैदान में देश-द्रोही भटार्क द्वारा बांध तोड़े जाने पर स्कन्द की पराजय होती है। उसकी समस्त सेना नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है; किन्तु स्कन्द बाल-बाल बच जाता है। कमला की कुटिया के समीप, देश-दुर्दशावश पगली हुई-सी, शर्वनाग की पत्नी 'रामा' अचानक उसे मिल जाती है और बुरी तरह उसे आड़े हाथ लेती है, और वह चुपचाप सुनकर असहाय अवस्था में बैठ कहने लगता है

"आह! मैं वही स्कन्द हूँ अकेला, निस्सहाय"। कमला यह दुख भरा शब्द सुन, द्वार खोल, कुटिया के बाहर आती है और कहती है-

'राजन्! कौन कहता है तुम अकेले हो? समस्त संसार तुम्हारी सहायता के लिये उद्यत है। अपनी शक्तियों को जगाओ भविष्य में क्या होगा क्या न होगा इसकी लेशमात्र चिन्ता मत करो। जो होना होगा वह अवश्य होगा. फिर तुम अपने कर्तव्य से क्यों गिरते हो? पूर्ण विश्वास के साथ जितना बन सके घोर उद्योग करो और विघ्न बाधाओं के मार्ग में ऐसा दृढ़ पर्वत खड़ा करदो जिससे सिर-मार-मार कर सिवाय लौट जाने के और कुछ बन न पड़े। देखो! राम कृष्ण भी तो इसी जननी जन्म-भूमि भारत माँ के सपूत थे। तुम्हारे अन्दर भी वैसी ही शक्तियाँ अवतरित हो सकती हैं जो रावण और कंस के निहन्ताओं को प्राप्त थीं। यदि तुम भी समस्त कर्तव्य-कर्मों को ईश्वर के कर्म समझ कर करना प्रारम्भ करदो तो तुम भी वैसे ही पूज्य बन जाओगे जैसे भगवान् राम और कृष्ण। स्कन्द! उठो, और इस तमोगुण को दूर फेंक, सचेत हो देश को जागृत

करने में लगजाओ। समस्त आर्य्यावर्त तुम्हारे झंडे तले होगा! विजय तुम्हारी अवश्यम्भावी है। याद रक्खो विश्व मे तुम्हारे शौर्य्य की तूती बोलेगी। देखो! कहीं पग न डिगा देना।"

कमला क्या है मानो भारत माँ ही अपने नवयुवक स्कन्दों को सजग कर रही है।

N B. आसुरीवृत्ति दो प्रकार की वृत्तियां श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण बतलाते है दैवी और आसुरी। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया आदि दैवी, और दम्भ, दर्प, अभिमान और क्रोधादि आसुरी।

(९०) सम्राट की उपाधि... ...कर रहा है (P. 143. L 12-16)

कुभा नदी के मैदान मे स्कन्द की पराजय से हताश हो मुद्गल महाशय अपने स्वभाव-सिद्ध विदूषकपने को तिलाञ्जलि दे गम्भीर भाव से भाग्य-चक्र की आलोचना कर रहे है

"अरे भाग्य-चक्र! तू भी बड़ा बलकारी है! मालवेश्वरी जयमाला को तेरी ही क्रूर दृष्टि के कारण अपने पतिदेव, वीर, बन्धुवर्मा का निधन देखना पड़ा और सती हुई। तेरी ही टेढ़ी नजर के कारण भीष्मसम दृढ़-प्रतिज्ञ, मगध का महानायक, वृद्ध पर्णदत्त, भिक्षुको की भाँति देवी देवसेना के साथ महादेवी देवकी की समाधि के समीप, झोपड़ी बना, दैन्य जीवन व्यतीत कर रहा है। महाराज स्कन्दगुप्त न जाने कहाँ मारे-मारे फिर रहे हैं? उन्हीं की तलाश मे चक्रपालित, भीमवर्मा और मातृगुप्त पागल से घूम रहे हैं। विजया भी उन के साथ सुनी जाती है। यह भी एक आश्चर्य ही की बात है। उसका इधर को मुड़ना सन्देह से खाली नहीं। मगध मे पुरगुप्त को राज-सिंहासन पर बिठाने की आशा से अनन्तदेवी ने हूणो से मेल कर लिया है। पुरगुप्त को सम्राट तो बनाया जा रहा है, किन्तु सम्राट बनने की योग्यता गरीब कहाँ से लावेगा? मगध के सम्राटों की उपाधि है

'प्रकाशादित्य' अर्थात् चमकता सूर्य। किन्तु इस ठण्डे सूर्य्य में न चमक है न गर्मी। सिंहासन के सिंह सोने के अवश्य है लेकिन क़ाबू गीदड़ों पर भी नहीं। देश उल्टा विदेशी हूणों का गुलाम बना हुआ है, और भटार्क जैसे मूर्ख देश-द्रोही अपनी मूर्खता पर पछता रहे है कि हाय! विदेशियोंका सहायता कर कितनी भूलकी!"

N.B. देवकुलिक क्षुद्र पुजारी वा भिक्षु।

(४१) परन्तु इस संसार का···एक (P. 154; L. 12-20)

विजया स्कन्द को प्रलोभन दे रही है कि संसार के झंझटों को त्याग उसके साथ आनन्द का जीवन व्यतीत करे। स्कन्द असहाय देश निवासियों को दुःख सागर से उबारने की चिन्ता मे है। विजया कहती है कि दुख-सुख कर्मों का फल है, व्यर्थ की चिन्ता से क्या लाभ? स्कन्द का उत्तर भी स्कन्द के उपयुक्त ही है:

"संसार की रचना परमेश्वर ने व्यर्थ नही की। इसमे भी उसका कोई गूढ़ रहस्य है। उसकी इच्छा है कि इसे पृथ्वी का स्वर्गधाम बना दिया जाय, और यह तब ही हो सकता है जब हमारे अन्दर देवताओं-के-से गुण हो। इससे यह हमारा परम कर्तव्य है कि हम उसकी इच्छानुसार कार्य करें। परमेश्वर चाहता है कि मेरे द्वारा अत्याचारी हूणों का देश से काला मुँह किया जाय। मेरा हूणों से कोई निजी द्वेष नही। और देश के अन्दर जो एक कोने से दूसरे कोने तक अशान्ति के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं, इसमे भी कोई दैवी रहस्य है। जगन्नियन्ता के नियमो का अधिक समय तक उल्लंघन नही किया जासकता। उसका चक्र-सुदर्शन बड़े बड़े बलधारियो को तनिक सी देर मे कुछ का कुछ कर डालता है। मुझे भी उसी चक्र का एक तुच्छ सा अवयव समझ। हूणो के अत्याचार की भी हद्द होगयी। अब वह अधिक समय तक देखा नहीं जासकता। आनन्द विलास का अब तू नाम न ले।"
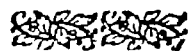
# स्कन्द-गुप्त नाटक में 'प्रसाद'जी की नाट्य-कला का परिचय

(१) वस्तु-योजना के लिये ऐतिहासिक घटना का आश्रय लिया गया है। घटना भी उस काल की जबकि गुप्त-साम्राज्य अपने उत्कर्ष की चरम सीमा को पहुँच चुका था। प्रसाद जी उन उत्कृष्ट साहित्य सेवियों मे से हैं जिनको भारत के अतीत की गौरव-गरिमा पर गर्व है। अतएव अतीत के ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित कर पाठको के हृदय को देश-प्रेम से आप्लावित करने मे 'प्रसाद' जी बड़े दक्ष है।

(२) आदर्श-वाद का प्राचुर्य्य—श्रीयुत मैथिली शरणजी गुप्त की भाँति प्रसादजी भी आदर्श-वादी लेखक है। आदर्श-चरित्रों को सामने लाकर उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न की जाती है। तदनन्तर तद्वत् आचरण करने की प्रेरणा उत्पन्न होना स्वाभाविक धर्म है। अतः कमला और रामा की कृतज्ञता, देवसेना का निस्वार्थ, स्नेह, पर्णदत्त और बन्धुवर्मा का राष्ट्र-प्रेम, आदर्श के उत्कृष्ट नमूने पाठकों की भेट किये गये हैं।

इनके उज्वल चरित्र को पढ़ कर पाषाण से पाषाण हृदय भी विना प्रभावित हुए नहीं रह सकता। भारत की वर्तमान परिस्थिति मे तो इस प्रकार के भावो का जितना भी प्रसार किया जासके अत्यन्त हितकर होगा।

(३) भाषा की क्लिष्टता—इसका कारण मुख्यतया उनके दार्शनिक विचार और संस्कृत भाषा से प्रेमाधिक्य ही जान पड़ता

है। हिन्दी भाषा के प्रचलित सामान्य शब्दों का प्रयोग न कर उन्हे संस्कृत के अप्रचलित और क्लिष्ट शब्द अधिक भाते है। 'आक्रमण' के स्थान में 'अभियान', और प्रलोभन' की जगह 'उत्कोच' का प्रयोग प्रिय है। 'एवं' और 'अथवा' का स्थान वे 'अथच' को देना पसन्द करते हैं। यही कारण है कि उनकी लेखनी 'प्रकोष्ट', "प्रतारणा', 'प्रतिश्रुत', 'प्रतिशोध', 'कादम्ब', 'आपानक'. 'महाबलाधिकृत', 'न्यायाधिकरण', 'व्योम', 'काकली' 'विन्यास' आदि आदि अपरचित शब्दों की ओर अधिकतया झुक जाती है। साधारण पाठकों के लिये आत्मवाद, विश्वात्मवाद, अनात्मवाद. मध्यमा-प्रतिपदा और नेति-नेति की चर्चा वैसी ही क्लिष्ट है जैसी लैटिन और ग्रीक भाषा का अध्ययन।

(४) **रहस्यवाद की ओर झुकाव**—हिन्दी भाषा के रसिक बहुत दिनों से अपने सीधे सादे दोहे, चौपाई कवित्त, सवैय्या आदि साधारण छंदों की कविता मे यथेष्ट आनन्द लाभ करते चले आरहे थे। कवि-सम्राट रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि के नोबुल पुरस्कार से हिन्दी के कतिपय मन-चले कवियों मे भी असाधारण लहर उत्पन्न हुई। टैगोर की काव्य-पद्धति का अनुसरण किया जाने लगा। आलोक, नीरवता, स्तब्धता, अदृष्ट, नियति, विह्वलता, आदि का करुण-क्रन्दन यत्र तत्र सुनाई दिया जाने लगा। क्या कहा, किसने कहा, किसको कहा, किस लिये कहा, यह कुछ पता नहीं। गूंगे की बात हो गयी। या तो गूंगा ही समझे या उसके घर वाले। इस प्रकार के काव्य का नाम-करण हुआ रहस्यवाद। 'प्रसाद' जी इस लहर से अछूते नहीं बचे। केवल एक चावल से समस्त खिचड़ी का पता चलाने के विचार से केवल एक ही उदाहरण बस होगा।

उमड़ कर चली भिगोने आज
तुम्हारा निश्चल अंचल छोर
नयन-जल-धारा रे प्रतिकूल!
देख ले तू फिर कर इस ओर

हृदय की अन्तर्तम मुसक्यान
कल्पना मय तेरा यह विश्व
लालिमा में लय हो लवलीन
निरखते इन आँखो की ओर

बस, लालिमा मे लवलीन हो 'कल्पनामय' अर्थों का चिन्तन करते रहिये; कभी न कभी लहर उमड़ कर विचारे 'अन्तरतम' को भिगो ही जायगी।

(५) विचारो में दार्शनिकता--जान पड़ता है 'प्रसाद' जी ने उपनिषदो और बौद्ध-दर्शनो का अच्छा अध्ययन किया है, इसी से स्थल स्थल पर निर्वाण, श्रमण, विहार, महाबोधि, संघ, महा स्थविर, तथागत, आत्मवाद, विश्वात्मवाद, अनात्मवाद मध्यमा-प्रतिपदा और नेति नेति का उल्लेख मिलता है।

(६) अभिनय के लिये अनुपयुक्तता—अङ्कों की संख्या (५) अधिक है। कई युद्ध, कुभा नदी का बांध-भज्जन, भयङ्कर बाढ़, स्कन्द की सेना का बहकर नष्ट होना आदि ऐसी घटनाएं है जिनका अभिनय नहीं किया जा सकता।

(७) कथोपकथनों मे आवेग और भावुकता का प्राधान्य है। जान पड़ता है पात्र सामने उपस्थित है। पाठक नृशंस हूणो के अत्याचारो पर विक्षुब्ध होता, भटार्क, प्रपंचबुद्धि आदि की दुष्कृतियो पर घृणा प्रदर्शित करता, रामा और कमला की कृतज्ञता पर मुग्ध होता, पर्णदत्त, और चक्रपालित की राज-भक्ति पर सन्तोष

प्रकट करता; और बन्धुवर्मा और देवसेना के आत्मोत्सर्ग की भूरि-भूरि प्रशंसा करने के लिये विवश हो उठता है। पात्रों के हर्ष में हर्षित और शोक में शोकाकुल हुए बिना रहा ही नहीं जाता। लेखक की सफलता भी इसी में है।

देखिये! विजया का कविवर मातृगुप्त के लिये कैसा रोमाँचकारी उद्बोधन हो रहा है!

आश्चर्य और शोक का समय नहीं है। सुकवि शिरोमणे! गा चुके मिलन-संगीत; गा चुके कोमल कल्पनाओं के लचीले गान; रो चुके प्रेम के पचड़े। एक बार वह उद्बोधन गीत गा दो कि भारतीय अपनी नश्वरता पर विश्वास करके अमर भारत की सेवा के लिये सन्नद्ध हो जाँय!

(८) रसों में वीर, करुण और शान्तरस का प्राधान्य पाया जाता है। इन में भी करुणार्द्र-हृदय 'प्रसाद' जी करुण-रस के ही अधिक रसिक हैं।

अपने ज्येष्ठ भ्राता बन्धुवर्मा के निधन पर भीमवर्मा का शोक कितना करुणोत्पादक है!

"कहाँ है मेरा भाई, मेरे हृदय का बल, भुजाओं का तेज, वसुन्धरा का शृङ्गार, वीरता का वरणीय बन्धु, मालव-मुकुट आर्यबन्धुवर्मा?"

स्कन्द के पराजित होने पर प्रख्यातकीर्ति का स्वगत-प्रलाप वीर सैनिकों को निराश देख, किसको द्रवीभूत न कर देगा?

"सब पागल लुटगये-से, अनाथ और आश्रयहीन यही तो हैं- आर्य-राष्ट्र के कुचले हुए अंकुर, भग्न-साम्राज्य-पोत के टूटे हुए पटरे और पतवार। ऐसे वीर हृदय! ऐसे उदार!!"

(९) चरित्र-चित्रण में कथोपकथन एवं स्वगत-भाषण दोनों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिये स्वय 'स्कन्द' लिया जा सकता है

देश-दुर्दशा से पगली हुई रामा स्कन्द को देख उसका वीरत्व जगा रही है—

" देखा था एक दिन ! वही तो है जिसने अपनी प्रचड हुँकार से दस्युओं को कँपा दिया था, ठोकर मारकर सोई हुई अकर्मण्य जनता को जगा दिया था जिसके नाम से रोएं खड़े हो जाते थे, भुजाएँ फड़कने लगती थीं। वही स्कन्द—रमणियो का रक्षक, बालकों का विश्वास, वृद्धो का आश्रय और आर्यावर्त की छत्र-छाया।"

'स्कन्द' का स्वगत उसकी दूसरी वृत्ति का द्योतक है

'बौद्धों का निर्वाण योगियो की समाधि, और पागलों की सी सम्पूर्ण विस्मृति मुझे एक साथ चाहिये। चेतना कहती है कि तू राजा है, और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलौना है उसी खिलवाड़ी वटपत्र शायी बालक के हाथों का खिलौना है। तेरा मुकुट श्रम-जीवी की टोकरी से भी तुच्छ है।"

(१०) नाटक का प्रारम्भिक दृश्य प्रधान पात्रो के चरित्र और विषयारम्भ की परिस्थिति का परिचय कराता है।

संस्कृत के नाटक प्राय नान्दी-पाठ से प्रारम्भ होते हैं। तदनन्तर सूत्रधार का आगमन होता है और अपनी स्त्री से वार्तालाप के मध्य नाटककार का सूक्ष्म परिचय करा नाटक प्रारम्भ करने की सूचना देता है। नाटक के विषय का पता भी उसी से चल जाता है। हिन्दी के प्रारम्भिक नाटकों ने भी इसी शैली का अनुसरण किया। किन्तु 'निरंकुशाः कवयः' वाली उक्ति के अनुसार 'प्रसाद' महोदय भी अपनी आन के निरंकुश ही हैं।

नाटक का प्रारम्भ उज्जयिनी में गुप्त-साम्राज्य के स्कन्धावार के दृश्य से करते है। न नांदी पाठ, और न सूत्रधार का आगमन। स्वगत-चिन्तन होता है और झट से आर्य पर्णदत्त से वार्तालाप छिड़ जाता है। स्कन्द साम्राज्याधिकार के प्रति उदासीनता प्रकट करता है और साम्राज्य का अनन्य भक्त पर्णदत्त उसे कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर करता है। इसी बीच मगध साम्राज्य की समस्त वस्तु-स्थिति का सिंहावलोकन भी हो जाता है।

(११) पात्रों मे सात्विकी, राजसी और तामसी तीनों प्रकार की प्रकृतियाँ विद्यमान है- पुरुष-पात्रों में लंका-राज-कुल का श्रमण प्रख्यातकीर्ति और स्त्री-पात्रो मे महादेवी देवकी को शुद्ध सात्विक-गुण-सम्पन्न पाते है। कतिपय ब्राह्मण लोग पशु-बलि चढ़ाने पर उद्यत है। बौद्ध-जनता और अधिकारीवर्ग इस का घोर विरोध कर रहे है। प्रख्यातकीर्ति कितने मधुर शब्दो में दोनो सम्प्रदायो को सत्पथ पर लाने का प्रयत्न कर रहा है-

"हम लोग एक ही मूल-धर्म की दो शाखाएँ है। आओ हम दोनो अपने उदार विचार के फूलो से दुःख-दग्ध मानवों का कठोर पथ कोमल करे।"

यद्यपि भटार्क और शर्वनाग आदि ने निर्दोष देवकी के वध का प्रयत्न किया, फिर भी समय पड़े पर जब वे बन्दी हुए तो देवकी ने उन्हे क्षमादान दिलाया। शरणागत 'शर्वनाग' को किन वत्सलता भरे शब्दो में सम्बोधित करती है।

"उठो! क्षमा पर मनुष्यो का अधिकार है, वह पशु के पास नहीं मिलती। प्रतिहिंसा पाशव-धर्म है। उठो मैं तुम्हे क्षमा करती हूँ।"

देवसेना की हत्या का षडयन्त्र रचने वाली विजया को भी इसी प्रकार क्षमा दान कराया।

"वत्से! आज तुम्हारे शुभ महाभिषेक में एक बूंद भी रक्त न गिरे। तुम्हारी माता की यह मंगल कामना है कि तुम्हारा शासन-दण्ड क्षमा के संकेत पर चला करे। आज मैं सब के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।"

भीमवर्मा और जयमाला शुद्ध राजसी प्रकृतिवाले पात्र है। वीर हैं, धीर हैं, किन्तु आत्मोत्सर्ग की उतनी मात्रा नहीं जितनी बन्धुवर्मा और देवसेना में।

खिंगिल, प्रपञ्चबुद्धि और शर्वनाग पुरुष-पात्रो में, और अनंतदेवी स्त्री-पात्रो में। आसुरी या तामसी वृत्ति वाले पात्र है। आपानकों से प्रेम है, और क्रूरकर्मों से लेशमात्र हिचकिचाहट नहीं।

बन्धुवर्मा, पर्णदत्त, भटार्क, रामा और विजया मिश्रित प्रकृति वाले हैं। वीरत्व सब में है। अन्तर केवल इतना ही है कि किसी में सत्व का पुट है किसी में तम का।

(१२) नाटक का वस्तु-विन्यास जटिल है मगध, मालव और सिंहल एवं हूण राज्यों की विभिन्न राजनैतिक परिस्थितियाँ, परस्पर के सम्बन्ध और अन्तर्विद्रोहादि के सम्मिश्रण के कारण पात्रों की संख्या मे अनावश्यक वृद्धि हो गयी है जिस से घटना तारतम्यका यथावत् याद रखना कठिन हो जाता है। कहीं धातुसेन आ कूदता है तो कहीं मातृगुप्त। कभी रंग-मंच पर मालव का दृश्य दिखाई देता है, कभी बौद्धों और ब्राह्मणों का पशु-बलि विषयक विद्रोह। क्षण भर मे देवी देवकी की समाधि का भाजन, और आर्य-पर्णदत्त का देवकलिकों और भिक्षुकों की भाँति जीवन-लीला।

(१३) नाटक में नियति और नैराश्य का आधिपत्य है। पद-पद पर उदासीनता दिखाई दे जाती है। कभी स्कन्द के मुख से अधिकार-सुख को 'मादक और सारहीन' सुनते हैं; कभी वह अधिकारियों को जड़-ढालवत् बता, और अपने तईं सिर्फ एक 'सैनिक' समझ, अधिकार प्राप्ति की अवहेलना करता है। साम्राज्य को वह एक प्रकार की गले-पड़ी वस्तु समझने लगता है।

कहीं नर्तकियों के मुख से सुनते हैं निराशा भरी आह।

"सुनी बहुत आनन्द भैरवी
विगत हो चुकी निशा-माधवी
रही न अब शारदी कैरवी
न तो मघा की फुहार कोकिल।"

कहीं "अतीन्द्रिय जगत् की साकार कल्पना की ओर हाथ बढ़ाते-बढ़ाते स्वप्न टूट जाता है।"

कभी कोई पात्र 'मौन-नीड़' में निवास करना पसन्द करता है और छेड़ने पर विगड़ उठता है।

कहीं कोई पात्र उपदेश करने लगता है कि 'पुरुष उछाल दिया जाता है, उत्पेक्षण होता है और स्त्री आकर्षण कर देती है।' बस इसी को 'जड़ प्रकृति का चेतन रहस्य' बता दिया जाता है। मानो स्त्री-पुरुष प्रकृति के हाथ की कठ-पुतली है; अपनी कोई व्यक्तिगत-सत्ता और संकल्प-शक्ति नहीं रखते।

कहीं 'सूचीभेद्य अन्धकार में छिपने वाली रहस्यमयी नियति का प्रज्वलित कठोर नियतिका' सहसा दर्शन हो जाता है।

(१४) नाटक-राष्ट्रीयता, स्वाभिमान और देश-प्रेम के उत्कृष्ट भावों से परिपूर्ण है क्या वृद्ध पर्णदत्त और गोविन्दगुप्त, क्या युवा चक्रपालित और मालवेश बन्धुवर्मा, क्या कविवर मातृगुप्त,

सब के सब उसी रंग में रंगे दिखाई देते हैं। स्त्री पात्रों में महादेवी देवकी, देवसेना, कमला और रामा भी वही एक राग अलापती हैं। विरोधी पात्र, प्रपंचबुद्धि, भटार्क, शर्वनाग, खिंगिल, अनन्तदेवी और विजया इस ढंग से प्रदर्शित किये गये है कि पढ़ने वाले के हृदय में उनके प्रति घृणा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। एक दो उदाहरण बस होंगे—मगध का उच्चपदाधिकारी, महानायक पर्णदत्त अनाथ बच्चों और क्षत-विक्षत सैनिकों की सेवार्थ कुसमय में भिक्षावृत्ति से निर्वाह कर रहा है। घूमते घामते आपत्ति के मारे चक्रपालित और भीमवर्मा अकस्मात् उधर आ निकलते हैं और 'पर्ण' को देख आर्य पर्णदत्त की जय का जय घोष करते है। पर्ण का उत्तर कितना मर्म-भेदी है

"मुझे जय नहीं चाहिये—भीख चाहिये। जो दे सकता हो अपने प्राण, जो जन्म-भूमि के लिये उत्सर्ग कर सकता हो जीवन, वैसे वीर चाहिये, कोई देगा भीख में ?"

वृद्ध पर्णदत्त के साथ पुत्री रूप से देवसेना भी निरवलम्बो की सेवा शुश्रूषा करती है। माता कमला अपने कपूत भटार्क और रामा अपने कुत्सित पति को देशद्रोह पर मन माना कोसती हैं 'ओह! नीच!! कृतघ्न!!! कमला कलङ्किनी हो सकती है, परन्तु यह नीचता, कृतघ्नता उसके रक्त में नहीं।

(१५) घटनान्त प्रायः आत्मोत्सर्ग पूर्ण अथवा सुखान्त हुआ है। महादेवी देवकी की हत्या का कुचक्र रचा जा रहा है। शर्वनाग को अतुल धन-राशि का प्रलोभन दिया गया है। बध-क्रिया होना ही चाहती है कि अकस्मात् स्कन्द किवाड़ खोल अन्दर घुस आता है और महादेवी की प्राण-रक्षा हो जाती है। यही दशा देवी देवसेना की बलि के समय होती है। दुष्ट प्रपंचबुद्धि

खड्ग उठाना ही चाहता है कि पीछे से मातृगुप्त उसका हाथ पकड़ गर्दन दबा देता है और देवसेना बाल-बाल बच जाती है। कुभा की बाढ़ में फँसे स्कन्द को फिर क्यों न बचा दिया जायगा ?

दुखान्त घटनाएँ केवल आत्मोत्सर्ग के लिये ही हुई हैं। मालवेश भीमवर्मा ने राष्ट्र-हित के लिये ही विदेशी हूणों से युद्ध करते करते प्राण समर्पण किये। महाराज स्कन्दगुप्त के चचा गोविन्दगुप्त भी गरुड़ध्वज पताका की रक्षार्थ विदेशी शत्रुओं से लड़ते लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए।

निष्कर्ष—समस्त नाटक राष्ट्रीयता और देशाभिमान से ओत-प्रोत है जिसे पढ़ कर मुर्दा से मुर्दा नवयुवक का हृदय फड़क उठता है, और जननी-जन्म-भूमि के हित आत्मोत्सर्ग करने के लिये लालायित होने लगता है।
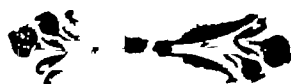
# GLOSSARY

अखिल सम्पूर्ण, कुल, तमाम।
अग्नि-तेज वीर्य्य।
अग्रसर उद्यत, तैयार।
अतीत - भूतकाल, गुजरा हुआ जमाना।
अतीन्द्रिय इन्द्रियों से परे, दिव्य, दैवी।
अथच और।
अर्थकरी लाभदायक।
अदृष्ट लिपि भाग्य का लेख, तकदीर का लिखा।
अनात्मभव जड पदार्थ, आत्मा से पृथक।
अनुनय विनय, विनती।
अनुपात त्रैराशिक सम्बंध, निसबत।
अनुमति आज्ञा, सलाह, मशवरा।
अनुष्ठान कार्यारम्भ, आराधना।
अन्तर्वेद गंगा और यमुना के बीच का प्रदेश, ब्रह्मावर्त प्रदेश।
अपदार्थ तुच्छ, हेय, निकम्मा।
अभाव कमी।
अभिचार—मन्त्र-तंत्र द्वारा किसी का अनिष्ट साधन।
अभिजात कुलीन, मान्य, उच्च कुलोत्पन्न।
अभिनय—नाटक, स्वांग, नकल, तमाशा।
अभिनन्दन प्रशंसा।
अभिनेता नाटक का खिलाड़ी, ऐक्टर (actor)
अभियान आक्रमण, हमला।
अभियोग मुकद्दमा।
अभिवादन नमस्कार।
अभिशाप शाप, बद्दुआ।
अभिसार प्रियतम से छिपकर संकेत स्थल पर मिलने जाना।
अभिव्यक्ति प्रकाशन।
अमरावती इन्द्रपुरी, स्वर्ग।
अरुणकेतन लाल झण्डा।
अलि भौंरा।
अवगुंठन घूंघट।
अवतारणा—फटकार लज्जा, शोक।
अवसाद विषाद, थकावट।
अवहेला अवज्ञा, तिरस्कार, वेपरवाही।
अवैध अनुचित, नित्य।
अव्यवस्थित—व्यवस्था रहित, अनियमित।
अस्तित्व मौजूदगी, सत्ता होना।
आतंक भय, धाक।

आपानक—मद्यपान, शराबनोशी।
आश्वासन सान्त्वना, ढाढ़स तसल्ली।
आत्मसात—हड़प जाना हजम कर जाना।
आप्तवाक्य ऋषिवाक्य, प्रमाण।
आर्य्य-पुत्र पति को पुकारने का सम्बोधन।
आवाहन निमन्त्रित करना, बुलाना।
आसन्न निकट, समीप।
आत्मवाद शरीर से भिन्न एक ऐसी वस्तु में विश्वास जिसे सुख-दुख और हर्ष-शोक का अनुभव होता है।
आलोक प्रकाश, चमक।
इति श्री अंत।
इन्दीवर नील कमल।
उच्छृंखलता उद्दण्डता, स्वेच्छाचारिता।
उत्कोच रिश्वत।
उत्तराधिकार युवराज पद।
उत्तरापथ—भारत का उत्तरीय भाग।
उत्सर्ग त्याग, आत्मबलि।
उत्प्रेक्षण देखना।
उन्मुक्त -खुला हुआ।
उद्घाटन खोलना, प्रकट करना।
उनींदी - ऊंघती हुई, निद्रित।
उपकरण सामग्री।
उपचार—दवा, लेप।
उपसंहार नाश, समाप्ति।
उल्कापात—तारा टूटना, उत्पात।
उल्कापिंड टूटता हुआ तारा अतएव अनिष्टकारी वस्तु।
ऊर्जित विकसित, प्रवर्धित।
ऋत और अमृत वृत्ति यज्ञादि कराकर उपजीविका पैदा करना।
कदर्य्य कंजूसपन का, कुत्सित।
काकली—मंद मधुर स्वर।
क्रान्ति—विप्लव, गदर(revolution)
कादम्ब -मदिरा (ईख का बनी)
कादम्बिनी मेघमाला।
कालागरु समयरूपी अगर।
अगर एक प्रकार का सुगंधित पदार्थ जो हवन सामग्री में पड़ता है।
कुचक्रिय विद्रोही, बागी।
क्रियाकलाप काम धन्धे।
कृत्या शत्रुनाश के लिये मंत्र-तंत्र द्वारा प्रयुक्त अभिचारिणी दुष्टा स्त्री, प्रलयकारिणी दैवी शक्ति।
केतन झंडा।
कैरवी चांदनी।
क्रन्दन रुदन, रोने का शब्द।
कन्दुक क्रीड़ा गेंद का खेल।

गति-विधि सचालन विधि, रंग-ढंग (movements)।

गरुडध्वज मौर्य्य राष्ट्र का झंडा जिस पर गरुड का चित्र बना हुआ था।

गहन घना ( thick )।

गुल्म रसाला, रजमट।

गो-निष्क्रय–गौ खरीदना(दानार्थ)।

गौण अनावश्यक।

घोषणा–मनादी,ड्यौढ़ी पिटवाना।

चक्रपाणि चक्र है पाणि (हाथ) में जिसके, भगवान् विष्णु।

चतुष्पथ चौराहा।

चरम अन्तिम, परमोत्कृष्ट।

चैत्य यज्ञीयस्थान यज्ञवेदि।

तथागत भगवान् बुद्ध।

पुंज-तम अंधकार का समूह, घोर अंधकार।

तुमुल उच्चस्वर से (tumltous)

तुषारकण पाले के टुकडे, बर्फ के टुकडे।

तूणीर–तरकस (arrow case)

तंत्री वीणा, शरीर की नाडी विशेष।

थाती धरोहर।

दायित्व कर्तव्य, फ़र्ज (duty)।

दार्शनिकता- पांडित्य (philosophy)।

दुर्दान्त उपद्रवी,कठिनता से बस में आनेवाला।

देव कुलिक क्षुद्र पुजारी, भिक्षु।

देवपुत्र—एक जाति विशेष।

देव-व्रत दिव्य व्रतों वाला।

धरा धारण करने वाली, पृथ्वी।

ध्वंसमयी विध्वंसकारिणी।

नखदान नखक्षत ,नख चिह्न।

नर्तकी नाचने वाली, वेश्या।

नवागत हाल में आयी हुई।

निगूढ़ गुप्त, अज्ञेय।

निधन मृत्यु, मौत।

निभृत एकान्त, निर्जन, गुप्त।

नियति दैव भाग्य।

नियामक शासक नियन्ता।

नियन्त्रण नियमन, अधिकार, रुकावट।

निरीह्–इच्छा रहित, निस्पृह।

निश्वास–ठंडी सांस,दर्द भरी आह।

नीहार बर्फ, पाला।

नीरद बादल।

नृशंसता–दुष्टता,निर्दयता,क्रूरता।

नेति-नेति अनन्त।

न्यायाधिकरण कचहरी, राज-दरबार।
पदच्युत बरखास्त।
पदाक्रान्त पैरों से कुचला हुआ।
पराकाष्ठा हद।
परिचारक सेवक।
परिचालन संचालन।
परिरम्भ लिपटन, तह।
पर्य्यटक—यात्री, भ्रमण करने वाला।
परिहास —हँसी, मजाक।
परुष कठोर, निष्ठुर।
पवि — वज्र।
पाथेय यात्रा की सामग्री।
पारस्य देश पारस का देश।
पारसीक पारस देश का निवासी।
पारिजात कल्प वृक्ष, देवतरु, पुष्प विशेष।
पारिषद सभासद(courtier)।
पुरन्दर इन्द्र।
पुष्कल —उत्तम, श्रेष्ठ, ढेर।
पूत पवित्र।
पोत जहाज।
प्रकरण प्रसंग, अवसर।
प्रकृति प्रजाजन, रैयत, रिआया।
प्रकृतिस्थ – शान्त।
प्रकोष्ट -कोठा।
प्रच्छन्न छिपा हुआ।
प्रतिकार उपाय, बदला।
प्रतिकृति मूर्त्ति।
प्रतिष्ठान नगर विशेष।
प्रतिशोध बदला, एवज।
प्रतिश्रुत प्रतिज्ञा-बद्ध।
प्रत्यक्षवाद प्रत्यक्ष मात्र वस्तुओं के ही मानने का सिद्धान्त।
प्रत्यावर्त्तन लौटना।
प्रवंचना — छल, कपट, धूर्तता।
प्रशस्त चौड़ा, विस्तृत।
प्रस्तुत उपस्थित।
प्रेमविभोर प्रेम में विह्वल।
प्राप्य प्राप्त करने योग्य वस्तु।
प्रेरित प्रभावित, नियोजित।
प्रौढ़ – यौवन के पीछे का अवस्था।
वड़वानल समुद्र के भीतर की आग
वर्वर असभ्य, जगली वहशी।
भट्टारक—मगध के सम्राट की पदवी।
भर्त्सना फटकार, निन्दा।
भावी आने वाली, भविष्य में होने वाली।
भीषण भयंकर।
भैरवी एक रागिमी जो प्रातःकाल गाया जाती है।
भ्रूभंग टेढ़ी निगाह।

मघा दसवाँ नक्षत्र जिसमे ५ तारे होते हैं ।
महाप्रतिहार बड़ा द्वारपाल ।
महाबलाधिकृत—प्रधान सेनापति।
महासन्धि-विग्रहिक सन्धि और विग्रह की नीति में कुशल ।
माधवी सुगंधित पुष्प युक्त एक लता-विशेष ।
रत्नाकर समुद्र, खान ।
राका पूर्णिमा की रात ।
लेलिहान बार बार जीभ निकालती हुई ।
लोल चंचल ।
वन्या लेश ।
वयस्य सखा,समान अवस्था वाला।
वरुणपथ समुद्र ।
वक्ष छाती ।
वागीश्वरी सरस्वती ।
वाचालता अधिक बोलना, बक-बक करना ।
वाडव समुद्र की आग ।
वाध्य – बधे हुये, मजबूर ।
वाहिनी - सेना ।
विकृत—विकार युक्त,बिगड़ा हुआ ।
विचक्षण पंडित, बुद्धिमान ।
विडम्बना मज़ाक, तिरस्कार ।
विद्रूप भयंकर ।
वितृष्णा निस्पृहा, तृष्णारहित होने की अवस्था ।
विपथगामिनी उलटे मार्ग पर चलने वाली ।
विपन्न दुखी, त्रस्त ।
विप्लव—विद्रोह, उपद्रव, गदर ।
विपिन वन, उपवन, जंगल ।
विभीषिका भय, डर ।
विश्लेषण जांच विवेचन ।
विषय देश, सूबा, प्रांत ।
विस्फोट फूट निकलना ।
विहाग एक प्रकार का राग ।
वीभत्स डरावना, भयंकर ।
वीरपुङ्गव वीर शिरोमणि ।
वृत्ति—वेतन, रोज़ी ।
वेश-विन्यास वेश भूषण ।
व्यक्त प्रकट ।
व्यङ्ग कटाक्ष, ताना देना ।
व्यञ्जक प्रकट करने वाला ।
व्यवस्था निर्णय(judgment)
व्यष्टि समाज की इकाई,एक अंश ।
व्योम आकाश ।
शतदल पुष्प विशेष कमल ।
शारदी... शरद ऋतु की ।
शिविर छावनी, पडाव ।
शिष्टता सभ्यता, सज्जनता ।

शैशव—बचपन ।
शुभ्र सफेद, श्वेत ।
शोणित—लाल वर्ण का, रुधिर, रक्त ।
श्रमण बौद्ध सन्यासी ।
श्रंखला जंजीर ।
श्यामा षोडश वर्षीया युवती ।
सत्ता प्रभुत्व, हुकूमत ।
सन्नद्ध तैयार, उद्यत ।
समष्टि सबका समूह ।
समीर पवन ।
समवेत इकट्ठा, मिश्रित ।
सर्वस्वान्त सर्वनाश ।
सिल्यूकस—सिकन्दर का सेनापति ।
सिहर उठना कांप उठना ।
सूचीभेद्य प्रगाढ, गहरा, घना ।
सृजन जन्म ।
सेनानी सेनापति ।
सौध-मन्दिर राज-मंदिर, महल ।
सौरभ सुगंध ।
सौराष्ट्र—गुजरात काठियावाड का प्राचीन नाम ।
संकलन एकत्रित करना ।
संकलित एकत्रित, इकट्ठा किया हुआ ।
संसृति—जीवन, जन्म, संसार ।
स्कन्धावार छावनी ।
स्तन्य माता का दूध ।
स्तूप ऊँचा बौद्ध मठ ।
स्तम्भित सुन्न, अवरुद्ध ।
स्थविर वृद्ध बौद्ध-भिक्षु ।
स्निग्ध दयामयी, स्नेहमयी ।
स्पृहा इच्छा ।
स्वगत मन ही मन में ।
स्वत्व अधिकार ।
स्वत्वाधिकारी स्वामी, मालिक ।
स्वानुभूति निजी अनुभव ।
हीरक हीरा ।
क्षतजरजर—घावों के कारण दुर्बल ।
क्षम्य क्षमा के योग्य ।
क्षितिज गोलाकार स्थान जहां आकाश और पृथ्वी मिले जान पड़ते हैं ।